All Subject to Patiala Jurisdiction.

साप्ताहिक कृषि समाचार-पत्र

खेती संदेश

मूल्य : 6/- रुपए

Postage Registered No. PB/PTA/0339/2025-2027

WEEKLY KHETI SANDESH

E-mail : khetisandesh2025@gmail.com

Chief Editor : Parminder Kaur • RNI Regd. No. PBBIL/25/A0210 • Issue Dt. 24-11-2025 • Vol.1 No.14 • H.O. : # 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.) • Mob. 90410-14575 • Page 12

2 लाख टन से अधिक वार्षिक उत्पादन के साथ तेजी से आगे बढ़ रहा पंजाब का मछली पालन क्षेत्र

हर साल 21 नवंबर को विश्व स्तर पर मनाए जाने वाले विश्व मछली पालन दिवस के अवसर पर पंजाब के पशुपालन, डेयरी विकास एवं मछली पालन मंत्री श्री गुरमीत सिंह खुड्डियां ने प्रदेश में मछली पालन के क्षेत्र में हुई शानदार प्रगति और इसे और अधिक टिकाऊ एवं लाभकारी व्यवसाय बनाने के लिए पंजाब सरकार द्वारा उठाए जा रहे सरगर्म कदमों की जानकारी दी। इस क्षेत्र में प्रदेश की प्रगति का ब्यौरा देते हुए श्री गुरमीत सिंह खुड्डियां ने बताया कि पंजाब के मछली पालन क्षेत्र में शानदार विकास हुआ है। उन्होंने बताया कि प्रदेश में मछली पालन के अंतर्गत रकबा 43,685 एकड़ में फैला हुआ है, जिससे सालाना लगभग दो लाख मीट्रिक टन से अधिक मछली का उत्पादन हो रहा है। साथ ही झींगा पालन में भी प्रदेश की अनूठी पहल के शानदार परिणाम सामने आए हैं। उन्होंने बताया कि 1,034 एकड़ सेम प्रभावित भूमि का उपयोग लगभग 2,759 मीट्रिक टन झींगा उत्पादन के लिए किया जा रहा है, जो प्रदेश की टिकाऊ जल-कृषि गतिविधियों की क्षमता को दर्शाता है और राज्य की अर्थव्यवस्था के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है।

इस प्रगति को और तेज करने के लिए पंजाब ने किसानों को किफायती दरों पर उच्च गुणवत्ता वाला मछली बीज उपलब्ध कराने के लिए 16 सरकारी मछली बीज फार्म स्थापित किए हैं।

इसी तरह प्रदेश सरकार पी.एम.एम.एस.वाई. योजना को सक्रिय रूप से प्रोत्साहित कर रही है, जिसके तहत विभिन्न परियोजनाओं के लिए 40 से 60 प्रतिशत तक सब्सिडी दी जा रही है। श्री गुरमीत सिंह

पंजाब के मछली पालन क्षेत्र में शानदार विकास हुआ है, पंजाब सरकार मछली पालन को लाभप्रद व्यवसाय बनाने के लिए निरंतर सरगर्म – गुरमीत सिंह खुड्डियां

खुड्डियां ने बताया कि पी.एम.एम.एस.वाई. के माध्यम से मछली पालन विभाग ने पहले ही 683 लाभार्थियों को 31.04 करोड़ रुपये सब्सिडी के रूप में प्रदान कर दिए हैं। यह वित्तीय सहायता मछली और झींगा पालने के लिये नए तालाबों, रीसर्कुलेटिंग एक्वाकल्चर सिस्टम (आरएएस), बायोफ्लॉक यूनिट, फिश फीड मिलों तथा मछली एवं मछली उत्पादों की ढुलाई के लिए वाहनों सहित कई तरह की पहलकदमियों को कवर करती है।

विश्व मछली पालन दिवस पर मछली एवं झींगा पालकों तथा अन्य भागीदारों को बधाई देते हुए श्री गुरमीत सिंह खुड्डियां ने इस संबंध में उत्पादन बढ़ाने के लिए सभी किसानों से सक्रिय रूप से कार्य करते रहने की अपील की। उन्होंने कहा कि प्रदेश सरकार इस व्यवसाय को प्रोत्साहन देने और अन्नदाता कहे जाने वाले किसानों की खुशहाली सुनिश्चित करने के लिए हर संभव सहायता प्रदान करने के लिए प्रतिबद्ध है।

केन्द्र सरकार ने जारी किया फिशरीज में ट्रेसेबिलिटी का राष्ट्रीय फ्रेमवर्क, 2030 तक रखा बड़ा लक्ष्य

केंद्र सरकार ने शुक्रवार को मत्स्य पालन और एक्वाकल्चर क्षेत्र को बढ़ावा देने और 2030 तक 1 लाख करोड़ रुपये के सीफूड निर्यात के महत्वाकांक्षी लक्ष्य को हासिल करने के लिए कई बड़े फैसलों की घोषणा की। इनमें श्फिशरीज और एक्वाकल्चर में ट्रेसेबिलिटी पर राष्ट्रीय फ्रेमवर्क 2025 सबसे प्रमुख है।

मत्स्य पालन विभाग द्वारा जारी एक आधिकारिक बयान के अनुसार, इस फ्रेमवर्क का उद्देश्य देश में समुद्री भोजन की आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता और जवाबदेही लाना है। इससे न केवल वैश्विक बाजारों में भारतीय सीफूड उत्पादों की विश्वसनीयता बढ़ेगी, बल्कि मछुआरों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य भी मिल सकेगा।

ये महत्वपूर्ण पहल भी हुईं जारी :

* ट्रेसेबिलिटी फ्रेमवर्क के अलावा, सरकार ने क्षेत्र के समग्र विकास के लिए कई अन्य दिशा-निर्देश और मानक जारी किए।

* मैरीकल्चर पर मानक संचालन प्रक्रियाएं (SOPs) : समुद्री क्षेत्रों में संगठित तरीके से मत्स्य पालन को बढ़ावा देने के लिए।

* स्मार्ट और एकीकृत मत्स्य पोत बंदरगाहों का विकास और प्रबंधनरू बंदरगाहों के बुनियादी ढांचे और सुविधाओं को आधुनिक बनाने के लिए।

* अधिसूचित समुद्री मत्स्य लैंडिंग केंद्रों पर न्यूनतम बुनियादी ढांचे का विकासरू मछली के उतरने के केंद्रों को बेहतर बनाना ताकि गुणवत्ता और स्वच्छता बनी रहे।

* जलाशय मत्स्य पालन प्रबंधन और तटीय एक्वाकल्चर के लिए दिशा-निर्देश : अंतर्देशीय जलाशयों और तटीय क्षेत्रों में मत्स्य पालन को व्यवस्थित और टिकाऊ बनाना।

कृषि एवं कृषि संबंधित विषयों पर आधुनिक जानकारी लेने हेतु पढ़ें

खेती संदेश

हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र

कृषि एवं कृषि सहायक धंधों की आधुनिक जानकारी से भरपूर

एक वर्ष में 52 अंक

किसान भाईयों व डीलर/डिस्ट्रीब्यूटरों के लिए

चंदों में विशेष छूट

एक वर्ष 400/- रुपए | दो वर्ष 700/- रुपए

पेमेंट करने के पश्चात् अपना डाक पता इस नंबर पर भेजें :

90410-14575

KHETI DUNIYAN
TID - 62763351

चंदे भेजने हेतु QR कोड सकेन करें।

खेती संदेश (कृषि साप्ताहिक)

के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड, पटियाला

चीकू की फल माइट व इसका नियंत्रण

डॉ. अभिषेक शुक्ला तथा प्रो. के.एम. पटेल, कीट विज्ञान विभाग, न.म. कृषि महाविद्यालय, नवसारी कृषि विश्वविद्यालय, नवसारी–396450 (गुजरात)

चीकू गुजरात राज्य में आम के बाद दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फल फसल है। गुजरात के अतिरिक्त चीकू की खेती भारत में महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल, उत्तर प्रदेश, तामिलनाडू, पंजाब, हरियाणा व पश्चिम बंगाल में भी होती है, मगर चीकू का सबसे अधिक क्षेत्रफल पश्चिम भारत में महाराष्ट्र व गुजरात राज्य में है। गुजरात में ये वलराड ज़िले में चीकू का क्षेत्रफल सर्वाधिक है। चीकू का सफल उत्पादन अनेक बातों पर निर्भर करता है। इनमें नाशीजीवों द्वारा होने वाला नुकसान बहुत ही महत्वपूर्ण है, इनमें चीकू का पतंगा, कली खाने वाली इल्ली, पत्ती खाने वाली इल्ली, पत्ती लपेटक इल्ली तथा फल मक्खी महत्वपूर्ण है। चीकू उत्पादक किसान पिछले कुछ वर्षों में फल काले होने की समस्या से चिंतित है, चीकू के फल में ये कालापन पानी से धोने पर भी नहीं छूटता है। इन काले फलों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने पर इस पर फल माइट की उपस्थिति देखने को मिलती है। चीकू में इस माइट के प्रकोप से उत्पादन में 15 से 16 प्रतिशत की कमी देखने को मिलती है, साथ ही साथ फल के बाज़ार भाव व मांग में भी कमी आ जाती है। चीकू उत्पादक इस माइट की पहचान, नुकसान व असरकारक नियंत्रण करे। इस हेतु इस लेख में विस्तृत जानकारी दी जा रही है।

पहचान : चीकू की फल माइट, टकरेला फुमेन्सीस, टकरेलीड कुल की माइट है। ये कीट वर्ग की सदस्य नहीं होती है, प्रौढ़ माइट में चार जोड़ी पैर होते है। इनका शरीर चपटा, अर्द्ध गोलाकार, लंबा, उदर सीधा होता है। इनका आकार सूक्ष्म व रंग लाल होता है। इसकी अपरिपक्व अवस्था में तीन जोड़ी पैर होते हैं। ये कोमल, चपटी, अर्द्ध लम्बाकार व हल्के लाल रंग की होती है। प्रोटोनिम्फ, ड्युटोनिम्न व ट्रीटोनिम्फ अवस्था में इनके चार जोड़ी पैर होते है तथा चपटी व अर्द्ध गोलाकार आकार की होती है।

जीवन-चक्र : ये माइट चीकू के अतिरिक्त अन्य पोषी पौधों पर देखने को नहीं मिलती है। इसकी उपस्थिति सम्पूर्ण वर्ष भर देखने को मिलती है। इसकी संख्या में बढ़ोत्तरी सर्वप्रथम अप्रैल से मई माह में व दूसरा गौण उछाल जून से सितंबर माह में देखने को मिलता है। इस माइट के जीवन-चक्र के दौरान निम्न अवस्थाएं होती है : अंडा, निम्फ (प्रोटोनिम्फ, ड्यूटोनिम्फ, ट्रीटोनिम्फ) व वयस्क। साथ ही साथ प्रोटोनिम्फ व ड्यूटोनिम्फ,

ड्युटोनिम्फ व ट्रीटोनिम्फ, ट्रीटोनिम्फ व वयस्क अवस्था के मध्य की प्रत्येक अवस्था में कुल तीन सुषुप्तावस्थाएं भी पाई जाती हैं। इस माइट का कुल जीवन-चक्र 65 से 68 दिनों का होता है, जिसमें अंडा अवस्था 10 से 11 दिन, इल्ली अवस्था 9 से 10 दिन, प्रोटोनिम्फ अवस्था 11 से 12 दिन, ड्युटोनिम्फ तथा ट्रीटोनिम्फ अवस्था 10 से 11 दिनों की व वयस्क अवस्था 44 से 48 दिनों की होती है। इस कीट की मादाएं फल की त्वचा पर लगभग 10 से 15 अंडे रखती है। प्रकृति में इस माइट के नरों की संख्या नगण्य होती है।

नुकसान : ये माइट अपने नाम के अनुरूप चीकू के फलों को ही नुकसान पहुंचाती है। इसका नुकसान फल के नीचे व मध्य भाग में अधिक देखने को मिलता है। साथ ही साथ पेड़ के बाहर की तरफ निकले फलों की अपेक्षा अंदर लगने वाले फलों में इसका प्रकोप अधिक देखने को मिलता है। इसका प्रकोप पत्तियों, फूलों व पेड़ की छाल इत्यादि पर नहीं होता है। इस माइट के शिशु व प्रौढ़ फलों की छाल से सतत रस चूसते है, इस तरह के फलों की त्वचा तड़क करके सूख जाती है तथा फल की छाल पर बारीक बुरादा जम जाता है। अधिक प्रकोपित फलों की त्वचा खुरदरी हो जाती है तथा उन पर कत्थई या काले रंग के धब्बे बन जाते हैं। इस तरह के फलों का वज़न कम हो जाता है तथा बाज़ार में इनकी कीमत घट जाती है तथा फलतः नुकसान उठाना पड़ता है।

नियंत्रण : इस माइट का प्रकोप नई रोपी गई चीकू की कलमों की तुलना में पांच वर्ष या इससे अधिक आयु के पेड़ों पर अधिक देखने को मिलता है। बड़े वृक्षों वाले बागों में नियमित उर्वरक, पानी, साफ-सफाई व समय पर शाखाओं की कांट-छांट करने से इस माइट के प्रकोप में कमी लाई जा सकती है। चीकू की, को-1 व को-2 किस्मों पर इस माइट का प्रकोप कम दिखाई देता है, जबकि काली पत्ती किस्म पर इसका सर्वाधिक प्रकोप देखने को मिलता है। इस माइट के प्राकृतिक शत्रुओं में परभक्षी माइट, ओक्टोडेलोडस जाति मुख्य है, ये भी वर्ष भर सक्रिय रह कर प्राकृतिक तौर पर इसका नियंत्रण करती है। इस माइट के रासायनिक नियंत्रण हेतु प्रोपरगाईट 57 प्रतिशत ई.सी. 0.1 प्रतिशत 20 मिलीलीटर का 10 लीटर पानी में घोल बना कर छिड़काव करने से सार्थक परिणाम मिलते है।

प्रदूषित बादल

वर्षा जल में कीटनाशकों और प्रदूषण का बढ़ता खतरा

ज्ञानेन्द्र रावत

कोलकाता के भारतीय विज्ञान एवं शिक्षा अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसार, पश्चिमी घाट और हिमालय के बादलों में करीब 12 जहरीली धातुएं, जैसे कैडमियम, क्रोमियम, तांबा और जस्ता पाई गई हैं। ये धातुएं निचले प्रदूषित इलाकों से बादलों में समाहित होकर पृथ्वी के सबसे ऊंचे और संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र तक पहुंच रही हैं।

बादल को पीने योग्य पानी का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। हालांकि, अब वर्षा के जल की शुद्धता पर सवाल उठने लगे है। पहले यह चर्चा में था कि हमारे वायुमंडल और खाद्य सामग्री में कीटनाशकों का मिश्रण जीवों के लिए खतरनाक हो सकता है, लेकिन अब वर्षा जल में भी इस तरह के रसायन की मौजूदगी पर चिंता जताई जा रही है। हालिया अध्ययनों में वायुमंडलीय एयरोसोल, यानी हवा में मौजूद छोटे-छोटे कणों में भी कीटनाशक पाए गए है। ये कण ट्रोपोस्फीयर में भी मौजूद होते है, जो पृथ्वी के वायुमंडल की पहली परत है और धरती की सतह से एक से दो किलोमीटर की ऊंचाई तक फैली होती है। नए-नए अध्ययनों में यह खुलासा हो रहा है कि बादल भी जहरीली धातुओं, प्लास्टिक और माइक्रोप्लास्टिक के साथ-साथ कीटनाशकों से भी भरे होते हैं। इसने वैज्ञानिकों की चिंता को और बढ़ा दिया है, क्योंकि बादलों में मौजूद ये जहरीले तत्व और कीटनाशक बारिश की बूंदों के साथ पृथ्वी पर गिरते है और सभी चीजों को प्रदूषित कर रहे है, जिससे मानव जीवन के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न हो सकता है। यह खुलासा फ्रांस और इटली के वैज्ञानिकों के संयुक्त अध्ययन तथा कोलकाता स्थित भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान के अध्ययन में हुआ है।

वर्ष 1990 के दशक में भी बारिश के पानी में कीटनाशकों की मौजूदगी का अध्ययन किया गया था, जिसमें जर्मन वैज्ञानिक फ्रांस ट्राटनर की टीम ने बादलों में अट्राजाइन हर्बीसाइड का पता लगाया था, जो मक्का के खेतों में इस्तेमाल होता था। हालांकि, उस समय इस रसायन की मात्रा का निर्धारण नहीं किया जा सका था, लेकिन बाद में इसे प्रतिबंधित कर दिया गया। हालिया अध्ययन में बादलों और बारिश के पानी के नमूनों में 32 प्रकार के कीटनाशकों की मौजूदगी पाई गई है। खास बात यह है कि इनकी अधिकांश किस्मों पर यूरोप में पिछले एक दशक से प्रतिबंध लागू है, जो यह दर्शाता है कि प्रतिबंध के बावजूद ये रसायन वायुमंडल में बने हुए हैं और वर्षा के पानी के माध्यम से पृथ्वी पर गिर रहे हैं।

वर्ष 1990 के दशक में भी बारिश के पानी में कीटनाशकों की मौजूदगी का अध्ययन किया गया था, जिसमें जर्मन वैज्ञानिक फ्रांस ट्राटनर की टीम ने बादलों में अट्राजाइन हर्बीसाइड का पता लगाया था, जो मक्का के खेतों में इस्तेमाल होता था। हालांकि, उस समय इस रसायन की मात्रा का निर्धारण नहीं किया जा सका था, लेकिन बाद में इसे प्रतिबंधित कर दिया गया। हालिया अध्ययन में बादलों और बारिश के पानी के नमूनों में 32 प्रकार के कीटनाशकों की मौजूदगी पाई गई है। खास बात यह है कि इनकी अधिकांश किस्मों पर यूरोप में पिछले एक दशक से प्रतिबंध लागू है, जो यह दर्शाता है कि प्रतिबंध के बावजूद ये रसायन वायुमंडल में बने हुए हैं और वर्षा के पानी के माध्यम से पृथ्वी पर गिर रहे है।

अध्ययन के अनुसार, बादल 10 से 50 माइक्रोमीटर आकार की बूंदों से बने होते है और यह प्राकृतिक कैमिकल रियेक्टर के रूप में काम करते है। सूर्य की किरणों के संपर्क में आने पर बादलों में फोटोकेमिकल प्रतिक्रिया होती है, जिसके कारण कीटनाशकों का स्वरूप बदल जाता है। इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप, बारिश के पानी के एक-तिहाई नमूनों में कीटनाशकों की मात्रा पीने के पानी के लिए निर्धारित मानकों से अधिक पाई गई है, जो स्वास्थ्य के लिए चिंता का कारण बन सकती है।

अध्यक्ष एंजोलेका बियान्को के अनुसार, इस विषय पर और अध्ययन की आवश्यकता है ताकि नई जानकारी सामने आ सके। इसके साथ ही, कीटनाशकों के उपयोग को कम करने के लिए जागरूकता बढ़ाने की भी महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

विडंबना है कि कीटनाशक अब हर जगह मौजूद है, चाहे वह नदी हो, झील हो, भूजल, बारिश का पानी या खाद्य पदार्थ। हाल के अध्ययनों ने यह भी उजागर किया है कि वायुमंडल की गतिशीलता के कारण कीटनाशकों का असर अब उन स्थानों तक पहुंच चुका है, जो पहले प्रदूषण से अछूते थे, जैसे ध्रुवीय क्षेत्र।

कोलकाता के भारतीय विज्ञान एवं शिक्षा अनुसंधान संस्थान के वैज्ञानिकों के अनुसार, पश्चिमी घाट और हिमालय के बादलों में करीब 12 जहरीली धातुएं, जैसे कैडमियम, क्रोमियम, तांबा और जस्ता पाई गई हैं। ये धातुएं निचले प्रदूषित इलाकों से बादलों में समाहित होकर पृथ्वी के सबसे ऊंचे और संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र तक पहुंच रही हैं। पूर्वी हिमालय के बादलों में प्रदूषण का स्तर पश्चिमी घाट की तुलना में डेढ़ गुना अधिक था, जिसका मुख्य कारण सिंधु-गंगा के मैदानों से होने वाला औद्योगिक और शहरी प्रदूषण है। इन इलाकों से निकलने वाले कैडमियम, तांबा और जिंक जैसे धातुओं का भार 40 से 60 प्रतिशत तक बढ़ चुका है।

महाबलेश्वर के बादलों में इनकी मौजूदगी औसतन 4.1 मिलीग्राम प्रति लीटर थी जबकि दार्जिलिंग के बादलों में इनकी मौजूदगी 2 मिलीग्राम प्रति लीटर थी। दार्जिलिंग के बादलों में लोहा, जस्ता, तांबा, निकिल, कैडमियम और क्रोमियम जैसी सूक्ष्म धातुओं की मौजूदगी ज्यादा मात्रा में मिली है। इस बारे अध्ययनकर्ताओं का मानना है कि पश्चिमी घाट के महाबलेश्वर और पूर्वी हिमालय के दार्जिलिंग के बादलों के नमूनों में क्रोमियम की अधिक मात्रा के चलते कैंसरकारी बीमारियों का खतरा बढ़ गया है।

यह निष्कर्ष पूर्वोत्तर इलाके के लिए काफी अहम है। यहां के लोग अक्सर सिंचाई या दैनिक कामों के लिए बादलों के पानी का ही इस्तेमाल करते हैं। इन धातुओं के लंबे समय तक संपर्क में रहने से मिट्टी, फसलों और मानव शरीर में जमाव हो सकता है। कुल मिलाकर इन अध्ययनों से पर्यावरण प्रदूषण के प्रति सामूहिक जागरूकता में बढ़ोतरी तो हुई है।

लेखक पर्यावरणविद् हैं।

खुम्ब की खेती

पोषण और औषधीय महत्व के साथ एक उत्कृष्ट कृषि विकल्प

आर. एस. चौहान, नरेन्द्र सिंह एवं नरेश यादव, कृषि विज्ञान केन्द्र, पंचकूला, चौ.च.सिं. हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (मो. 94162–44487)

खुम्ब (मशरूम) को एक स्वादिष्ट एवं पौष्टिक आहार के रूप में लंबे समय से पहचाना गया है। इसमें प्रोटीन, खनिज लवण तथा विटामिन जैसे आवश्यक पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। अपनी विशिष्ट सुगंध और स्वाद के कारण यह आहार के रूप में अत्यधिक लोकप्रिय बना हुआ है। भारत जैसे देशों में, जहां अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है, वहां प्रोटीन की कमी एक सामान्य समस्या के रूप में देखी जाती रही है। ऐसी स्थिति में, खुम्ब को भोजन के रूप में अपनाए जाने से न केवल प्रोटीन की कमी को दूर किया जा सकता है, बल्कि इसमें पाए जाने वाले खनिज तत्वों और विटामिन के कारण समाज में एक स्वस्थ जीवनशैली को प्रोत्साहन भी दिया जा सकता है। प्रारंभिक समय में खुम्ब का सेवन केवल उसके स्वाद के कारण किया जाता था, किन्तु अब इसमें विद्यमान गुणकारी एवं औषधीय तत्वों के कारण इसे औषधीय आहार के रूप में भी मान्यता प्राप्त हो चुकी है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) द्वारा खुम्ब को विकासशील देशों की बढ़ती जनसंख्या के लिए एक उपयुक्त पूरक आहार के रूप में स्थान प्रदान किया गया है।

पोषक तत्वों का विवरण :-

ताजा खुम्ब (100 ग्राम) में प्रायः निम्नलिखित तत्व पाये जाते है :-

प्रोटीन	-	3.1 ग्राम
वसा	-	0.8 ग्राम
कार्बोहाइड्रेटस	-	4.3 ग्राम
रेशे	-	0.8 ग्राम
उर्जा	-	43 कैलोरी
कैल्शियम	-	6.0 मि.ग्रा.
फासफोरस	-	110 मि.ग्रा.
लोहा	-	1.5 ग्राम
थायमिन	-	0.14 मि.ग्रा.
राइबोफलेविन	-	0.16 मि.ग्रा.
नायसिन	-	2.4 मि.ग्रा.
विटामिन सी	-	12.0 मि.ग्रा.
फोलिक एसिड	-	24.0 मि.ग्रा.
नमी	-	80 प्रतिशत

खुम्ब में प्रोटीन की मात्रा सब्जियों व पशुओ की प्रोटीन से ज्यादा व अधिक पाचनशील होती है। इसमें पाई जाने वाली प्रोटीन उच्च कोटी की होती है। इसमें अधिकतर सभी आवश्यक अमीनो अमल लाइसीन व ट्रिपटोफेन उचित मात्रा में पाए जाते है। उत्तम प्रोटीन होने के कारण कैल्शियम और फास्फोरस का भी सही शोषण होता है। खुम्ब में प्रोटीन की मात्रा सब्जियों व फलों की अपेक्षा 20 से 30 प्रतिशत, चावल से 7.3 प्रतिशत, गेहूं से 17.2 प्रतिशत, दूध से 25.2 प्रतिशत, संतरे से चार गुणा व सेब से 12 गुणा अधिक पाई जाती है। खुम्ब में कम कैलोरी, कम वसा, कम स्टार्च, कम कोलस्ट्रोल व अधिक पोटाशियम-सोडीयम अनुपात के कारण खुम्ब का आहार उन व्यक्तियों के लिए वरदान स्वरुप है जो मोटापे, अधिक तनाव व हृदय रोग से पीड़ीत रहते है। खुम्ब में भस्म व फाइबर (रेशे) उपलब्ध होने के कारण पेट का अम्लीयपन व कब्ज आदि को दूर करने में सहायक है।

खुम्ब में बहुत से विटामिन जैसे विटामिन बी-1 (थायमिन), बी-2 (राइबोफलेविन), बी-3 (नायसिन) भी उपलब्ध है, जो मानव शरीर की क्रियाओं के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। खुम्ब में विटामिन 'बी' की अधिकता होने के कारण बेरी-बेरी रोग से पीड़ीत लोगों के लिये भी यह बहुत गुणकारी है। इसमें विटामिन 'सी' अधिक होने के कारण यह बच्चों के दांतों के लिये विशेष लाभदायक है। नियासिन व पैंटाथिनिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में होने के कारण यह चर्म रोग व हाथ-पैरों में जलन को समाप्त करने में सहायक है। इसके अतिरिक्त खुम्ब में फोलिक अम्ल और लौह तत्व भी पाया जाता है जो विशेषकर फलों व सब्जियों में विद्यमान नही होता। यह तत्व गर्भ अवस्था व दूध पिलाने वाली महिलाओं में खून की कमी से होने वाले रोगों को कम करते है।

जहरीली व खाने योग्य दोनों ही तरह के खुम्बों में औषधीय गुण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। चीन व जापान जैसे विकसित देश तो खुम्ब से टॉनिक, दवाइयां व साज-सजावट में उपयोग कर करोड़ों-अरबों रुपये की विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहे है। अकेला जापान शिटाके नामक खुम्ब, जिनमें लेन्टीनन तत्व पाया जाता है, जिसके कैप्सूल बनाकर अन्तर्राष्ट्रीय बाजार से प्रति वर्ष करोड़ों रुपये कमा रहा है।

अमेनिय प्रजाति की जहरीली खुम्ब में मस्कीनोल व इबाटेनिक अम्ल पाया जाता हैं, जिसका प्रयोग मिरगी, दिमागी बीमारियों व भिन्न तरह के तन्तुओं के इलाज में किया जाता है। इसी प्रकार खाने वाले खुम्बों में शिटाके (लेन्टीनस इडोडंस) मिटाके (ग्राइफोला फरोनडांसा), गुच्छी मशरुम (ओरीकुलेरिया पोलीट्राइका), रिशी मशरुम (गेंगोडरमा लयुसीडम), पुआल मशरुम (बलवैरिया बलवैशिया), कोरियोलस वेरीकलर व कलेविटा गिगांनटिया आदि

खुम्ब ऐसे है, जिसमें कैसर, टयूमर, एड्स, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, इनफलुएंज़ा पोलियो वायरस व कुपोषण हेतु अनेक प्रकार की औषधियां तैयार की जा रही है, जिनमें इन रोगों से लड़ने की क्षमता पाई जाती है।

खुम्ब में वर्णित पौषटिक व औषधीय गुणों को ध्यान में रखते हुए हमें खुम्ब को अपने नियमित आहार में शामिल करना अति आवश्यक है ताकि मानव स्वस्थ रहे।

खेती संदेश

KHETI SANDESH

मुख्य कार्यालय :
9–ए, अजीत नगर,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 98151–04575

कार्पोरेट कार्यालय :
के.डी. कॉम्पलैक्स, गऊशाला रोड,
नजदीक शेरे पंजाब मार्केट,
पटियाला–147001
(पंजाब)
मो. 90410–14575

वर्ष : 01 अंक : 14
तिथि : 22-11-2025

सम्पादक

परमिंदर कौर

सम्पादकीय बोर्ड

डॉ. डी.डी. नारंग
डॉ. जे.एस. डाल
डॉ. आर.एम. फुलझेले

Editor : **PARMINDER KAUR**
Printer, Publisher and Owner of Weekly **'KHETI SANDESH'** Printed at **Drishti Printers,** Dasmesh Market, Near Sher-e-Punjab Market, Gaushala Road, Patiala-147001 (Pb.) and published from **Kheti Sandesh**, House No. 9-A, Ajit Nagar, Patiala-147001 (Pb.). E-mail : khetisandesh2025@gmail.com Mob. 90410-14575, RNI No.**PBBIL/25/A0210**

पपीते की खेती की उन्नत विधि

पपीता सबसे कम समय में फल देने वाला पेड़ है, इसलिए कोई भी इसे लगाना पसंद करता है। पपीता ना केवल सरलता से उगाया जाने वाला फल है, बल्कि जल्दी लाभ देने वाला फल भी है, यह स्वास्थ्यवर्धक तथा लोकप्रिय है, इसी से इसे अमृत घट भी कहा जाता है। पपीता में कई पाचक इन्जाइम भी पाए जाते हैं तथा इसके ताज़े फलों को सेवन करने से लंबी कब्ज़ीयत की बीमारी भी दूर की जा सकती है।

जलवायु : पपीते की अच्छी खेती गर्म नमी युक्त जलवायु में की जा सकती है। इसे अधिकतम 38 डिग्री सैल्सियस से 44 डिग्री सैल्सियस तक तापमान होने पर उगाया जा सकता है। न्यूनतम 5 डिग्री सैल्सियस से कम नहीं होना चाहिए। पाले तथा लू से पपीते को बहुत नुकसान होता है। इससे बचने के लिए खेत के उत्तरी-पश्चिम में हवा रोधक वृक्ष लगाना चाहिए। पाला पड़ने की आशंका हो, तो खेत में रात्रि के अंतिम पहर में धुंआ करके एवं सिंचाई भी करते रहना चाहिए।

भूमि : ज़मीन उपजाऊ हो तथा जिसमें जल निकास अच्छा हो तो पपीते की खेती उत्तम होती है, जिस खेत में पानी भरा हो, उस खेत में पपीता कदापि नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि पानी भरे रहने से पौधों में कॉलर रॉट बीमारी लगने की संभावना रहती है, अधिक गहरी मिट्टी में भी पपीते की खेती नहीं करनी चाहिए।

भूमि की तैयारी : खेत को अच्छी तरह जोत कर समतल बनाना चाहिए तथा भूमि का हल्का ढाल उत्तम है। 2×2 मीटर के अंतर पर लंबा, चौड़ा, गहरा गड्ढा बनाना चाहिए। इन गड्ढों में 20 किलोग्राम गोबर की खाद, 500 ग्राम सुपर फास्फेट एवं 250 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश को मिट्टी में मिला कर पौधा लगाने के कम से कम 10 दिन पूर्व भर देना चाहिए।

किस्म : पूसा मेजस्टी एवं पूसा जाइंट, वाशिंगटन, सोलो, कोयम्बटूर, हनीड्यू, पूसा ड्वार्फ, पूसा डेलीसियस, सिलोन, पूसा नन्हा आदि प्रमुख किस्में हैं।

बीज : एक हैक्टेयर के लिए 500 ग्राम से एक किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। पपीते के पौधे बीज द्वारा तैयार किए जाते हैं। एक हैक्टेयर खेती में प्रति गड्ढे 2 पौधे लगाने पर 5000 पौध संख्या लगेगी।

लगाने का समय एवं तरीका : पपीते के पौधे पहले रोपणी में तैयार किए जाते है, पौधे पहले से तैयार किए गड्ढे में जून, जुलाई में लगाना चाहिए, जहां सिंचाई का समुचित प्रबंध हो, वहां सितंबर से अक्तूबर तथा फरवरी से मार्च तक पपीते के पौधे लगाए जा सकते हैं।

नर्सरी में रोपा तैयार करना : इस विधि द्वारा बीज पहले भूमि की सतह से 15 से 20 सैंटीमीटर ऊंची क्यारियों में कतार से कतार की दूरी 10 सैंटीमीटर तथा बीज की दूरी 3-4 सैंटीमीटर रखते हुए लगाते हैं, बीज को 1 से 3 सैंटीमीटर से अधिक गहराई पर नहीं बोना चाहिए। जब पौधे करीब 20 से 25 सैंटीमीटर ऊंचे हो जाएं, तब प्रति गड्ढा 2 पौधे लगाना चाहिए।

पौधे पॉलीथीन की थैली में तैयार करने की विधि : 20 सैंटीमीटर चौड़े मुंह वाली, 25 सैंटीमीटर लंबी तथा 150 सैंटीमीटर छेद वाली पोलीथीन थैलियां लें। इन थैलियों में गोबर की खाद, मिट्टी एवं रेत का समिश्रण करना चाहिए।

थैली का ऊपरी 1 सैंटीमीटर भाग नहीं भरना चाहिए। प्रति थैली 2 से 3 बीज होना चाहिए। मिट्टी में हमेशा पर्याप्त नमी रखना चाहिए। जब पौधे 15 से 20 सैंटीमीटर ऊंचे हो जाएं, तब थैलियों के नीचे से धारदार ब्लेड द्वारा सावधानीपूर्वक काट कर पहले तैयार किए गए गड्ढों में लगाना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक : एक पौधे को वर्ष भर में 250 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम स्फुर एवं 500 ग्राम पोटाश की आवश्यकता होती है। इसे छः बराबर भाग में बांट कर प्रति 2 माह के अंतर से खाद तथा उर्वरक देना चाहिए। खाद तथा उर्वरक को मिट्टी में मिला कर थैली में देकर सिंचाई करना चाहिए। इस मिश्रण को नर पौधों को और ऐसे पौधों को नहीं देना चाहिए, जिसे 4 से 6 माह बाद निकाल कर फेंकना है।

नर पौधों को अलग करना : पपीते के पौधे 90 से 100 दिन के अंदर फूलने लगते हैं तथा नर फूल छोटे-छोटे गुच्छों में लंबे डंठल युक्त होते हैं। नर पौधों पर पुष्प 1 से 1.3 मीटर के लंबे तने पर झूलते हुए तथा छोटे होते हैं। प्रति 100 मादा पौधों के लिए 5 से 10 नर पौधे छोड़ कर शेष नर पौधों को उखाड़ देना चाहिए। मादा पुष्प पीले रंग के 2.5 सैंटीमीटर लंबे तथा तने के नज़दीक होते हैं।

निंदाई, गुड़ाई तथा सिंचाई : ठंड में 10 से 15 दिन एवं गर्मी में 4 से 7 दिन के अंतर पर सिंचाई करना चाहिए। पाले की चेतावनी पर तुरंत सिंचाई करें, तीसरी सिंचाई के बाद निंदाई-गुड़ाई करें। जड़ों तथा तने को नुकसान ना हो।

फलों को तोड़ना : पौधे लगाने के 9-10 माह बाद फल तोड़ने लायक हो जाते है। फलों का रंग गहरा हरे रंग से बदल कर हल्का पीला होने लगता है तथा फलों पर नाखुन लगने से दूध की जगह पानी तथा तरल निकलता हो तो समझना चाहिए कि फल पक गया होगा। फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए। छोटी अवस्था में फलों की छंटाई अवश्य करनी चाहिए।

पौध संरक्षण : माइट, एफिड्स तथा फल मक्खी जैसे कीटों का प्रकोप इन पर देखा गया है। इसके नियंत्रण को मैटासिस्टॉक्स 1 लीटर दवा प्रति हैक्टेयर की दर से तथा दूसरा छिड़काव 15 दिन के अंतर से करना चाहिए। फ्रूट एंड स्टेम रॉट बीमारी से पौधों को बचाने के लिए तने के पास पानी ना जमने दें। जिस भाग में रोग लगा हो, वहां चाकू से खुरच कर बोर्डो पेस्ट भर देना चाहिए। पाउडरी मिल्ड्यू के नियंत्रण के लिए सल्फर डस्ट 30 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अंतराल में छिड़काव करें।

आलू उत्पादन में मुख्य पोषक तत्व एन.पी.के. की मात्रा कई बातों पर निर्भर करती है, जैसे कि मृदा का प्रकार, उसकी पोषक तत्व धारण करने की क्षमता, आलू की किस्म व पोषक तत्व हम किस माध्यम से दे रहे हैं। अनुसंधान व प्रयोगों के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि सतपुड़ा पठार क्षेत्रों एन.पी.के. (120, 100, 100 किलोग्राम) मात्रा उपयुक्त पाई।

आलू फसल में खाद का प्रबंधन कैसे करें

डॉ. विजय के. पराड़कर, डॉ. डी.एन. नांदेकर, डॉ. अशोक राय, जे.ने.कृ.वि.वि. अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान आलू परियोजना, आंचलिक कृषि अनुसंधान केन्द्र, चन्दनगांव, छिंदवाड़ा

नाइट्रोजन की उपलब्धता के लिए कौन-कौन से उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए : आलू उत्पादन में नाइट्रोजन के लिए सबसे उपयुक्त उर्वरक अमोनिया सल्फेट व अमोनिया नाइट्रेट है, इसके बाद कैल्शियम अमोनिया नाइट्रेट, अमोनिया क्लोराइड व यूरिया है। नाइट्रोजन उर्वरक की क्षमता मृदा प्रकार, केटायन एक्सचेंज क्षमता व पी. एच. द्वारा प्रभावित होती है। जैसे कि यूरिया का उपयोग हम मध्यम अम्लीय मृदा में, कैल्शियम अमोनिया नाइट्रेट का उपयोग अम्लीय मृदा में कर सकते है। इसके विपरीत क्षारीय मृदाओं में इनका उपयोग नहीं करते।

आलू की फसल पोषक तत्वों के प्रति अधिक सहनशील होती है, क्योंकि ये उथली व फैली जड़ों वाली फसल है। आलू बहुत अधिक मात्रा में पोषक तत्व ग्रहण करता है। अत: पौधे बढ़वार एवं अधिक उत्पादन के लिए इसका उपयुक्त खाद प्रबंधन बहुत ही आवश्यक है। नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाशियम तीन प्रमुख पोषक तत्व है, जो आलू उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। नाइट्रोजन के उपायों से पौधों की बढ़वार में महत्वपूर्ण भूमिका के साथ-साथ कंदों की वृद्धि व कंदों के बनने की प्रक्रिया में सहायक होती है, जिसके फलस्वरूप अधिक उत्पादन प्राप्त होता है। फास्फोरस पौधे की आंतरिक संरचना के एवं कंदों का आकार एवं संख्या बढ़ाने में सहायक होता है। पोटाशियम कंद का आकार, शुष्क पदार्थ में वृद्धि रोग व कीट के प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करता है। भारत में आलू का औसत उत्पादन 19 टन प्रति हैक्टेयर है। इसका मुख्य कारण उचित मात्रा में खाद व उर्वरक का उपयोग ना करना है।

यूरिया का उपयोग : आलू लगाते समय यूरिया को 50 किलोग्राम तक नत्रजन यूरिया के द्वारा दे सकते हैं। बाकी का बचा हुआ नत्रजन प्रति हे. मिश्रित खाद द्वारा दें। इससे अधिक नत्रजन यूरिया से देने पर आलू के अंकुरण पर विपरीत प्रभाव होता है।

आलू की फसल 30 दिनों की होने पर 20 किलोग्राम नत्रजन प्रति हैक्टेयर यूरिया के द्वारा दें एवं मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें। यूरिया का 1.5 प्रतिशत घोल बनाकर 40-45 दिन की फसल पर छिड़काव करने से उपज में वृद्धि होती है।

फास्फोरस की उपलब्धता के लिए उर्वरक व उनका उपयोग : फास्फोरस की कमी से पौधों की बढ़वार रूक जाती है। मुख्यत: पौधे की प्रारंभिक अवस्था में पौधे गहरे हरे रंग के हो जाते हैं व पत्तियां गिरने लगती हैं। फास्फोरस के उपयोग से जड़ के विकास में सहायता मिलती है। फास्फोरस की मात्रा मृदा में उपलब्धता व मृदा स्थिरीकरण की क्षमता निर्भर करता है। आलू उत्पादन में फास्फोरस की मात्रा 80-180 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर उपयोग की जाती है और यह मात्रा जगह पर निर्भर करती है। जैसे पंजाब, उत्तर प्रदेश व बिहार की एल्यूवियल मृदा में इसकी 50-150 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की मात्रा उपयोग की जाती है। वहीं तराई मृदाओं जैसे रांची आदि में 190 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर फास्फोरस लगता है। सतपुड़ा पठारी क्षेत्रों में फास्फोरस 100 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर दर से आलू कंद लगाने के पूर्व डाला जाता है। फास्फोरस की उपलब्धता के लिए पानी में घुलनशील फास्फोरस उर्वरक जैसे सुपर फास्फेट और डाई अमोनिया फास्फेट (डी.ए.पी.) का उपयोग अधिक प्रभावी होता है। आलू कंद को 1.5 प्रतिशत सुपर फास्फेट, 0.5 यूरिया, 0.2 प्रतिशत मैंकोज़ेब घोल में उपचारित करने से फास्फोरस की आवश्यकता में 50 प्रतिशत तक की कमी आती है।

पोटाशियम : पोटाशियम तत्व की कमी से कंद की गुणवत्ता के साथ उसकी रासायनिक संरचना पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पोटाशियम का उपयोग दो बार 50 प्रतिशत आलू लगाते समय व बाकी का 50 प्रतिशत मिट्टी चढ़ाते समय डालें। इसके कंद की संख्या व उपज दोनों में वृद्धि होती है। पोटाशियम के उपयोग का प्रभाव आलू की ठंड की फसल में अधिक दिखाई देता है।

आलू में सूक्ष्म पोषक तत्वों का उपयोग : आलू के पौधे को एन.पी.के. के अलावा द्वितीय पोषक तत्व जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर व सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे आयरन, ज़िंक, मैगनीज़, कॉपर, बोरॉन व माल्बिडेनम की आवश्यकता भी होती है। एन्डीसॉल्स प्रकार की मृदा में अगर हम आलू की खेती करते है, उसमें सूक्ष्म पोषक तत्व की मात्रा बहुत कमी होती है, जिसमें ज़िंक सबसे कम। इसके बाद आयरन, कॉपर, मैगनीज़, बोरान व माल्बिडेनम की कमी पायी जाती है। सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से आलू की उपज व कंदों की गुणवत्ता दोनों में ही वृद्धि होती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग से आलू की उपज व कंदों की गुणवत्ता दोनों में ही वृद्धि होती है। ज़िंक व कॉपर के उपयोग करने से आलू के पौधे में बीमारी कम होती है। ज़िंक के प्रयोग से कंद की उपज में वृद्धि होती है। आलू में सूक्ष्म पोषक का प्रभाव मिट्टी का प्रकार आलू की किस्म तथा उनके उपयोग करने के तरीके पर निर्भर करता है। विभिन्न प्रकार के प्रयोगों से ज्ञात होता है कि सभी पोषक तत्वों में ज़िंक सबसे महत्वपूर्ण है। इसके बाद आयरन, कॉपर, मैंगनीज़, बोरॉन व मॉब्लिडेनस है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि एल्यूवियल व पर्वतीय क्षेत्रों की मृदाओं में कॉपर ज़िंक व मैंगनीज़ आदि कम पाए जाते है, जबकि आयरन व मॉब्लिडेनम कमी काली मृदा में पाई जाती है। ज़िंक की कमी से आलू में एल्यूवियल या लिटिल लीफ नामक बीमारी आती है एवं पौधे की बढ़वार रुक जाती है।

सूक्ष्म पोषक तत्वों के उपयोग की विधियां

मृदा का उपयोग : ज़िंक सल्फेट को 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से खेतों में डाल दें।

घोल बना कर - मैदानी क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषण तत्वों का दो बार 40 व 60 दिन में छिड़काव करें व पर्वतीय क्षेत्रों बुवाई के 60-80 दिन में करें।

सूक्ष्म पोषक तत्वों द्वारा बीज उपचारण कंद को 2 प्रतिशत ज़िंक ऑक्साइड में लगाने से पहले उपचारित करें। कंदों को 0.05 प्रतिशत सूक्ष्म पोषक तत्व के घोल में 3 घंटे तक डुबो कर रखें।

आलू के खेत में जैविक खाद का उपयोग : आलू फसल में जैविक खाद जैसे एज़ोटोबैक्टर व फास्फो बैक्टीरिया के उपयोग से आलू की उत्पादकता में वृद्धि के साथ-साथ उर्वरक के उपयोग में 25 प्रतिशत तक की कमी आती है। फास्फोरस घुलनशील जीवाणु से आलू के कंद को उपचारित करने से उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ कंद के शुष्क पदार्थ में भी वृद्धि होती है। इसी प्रकार नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाने के लिए एज़ोटोबैक्टर के उपयोग से मध्यम व बड़े आकार के कंद प्राप्त होते हैं।

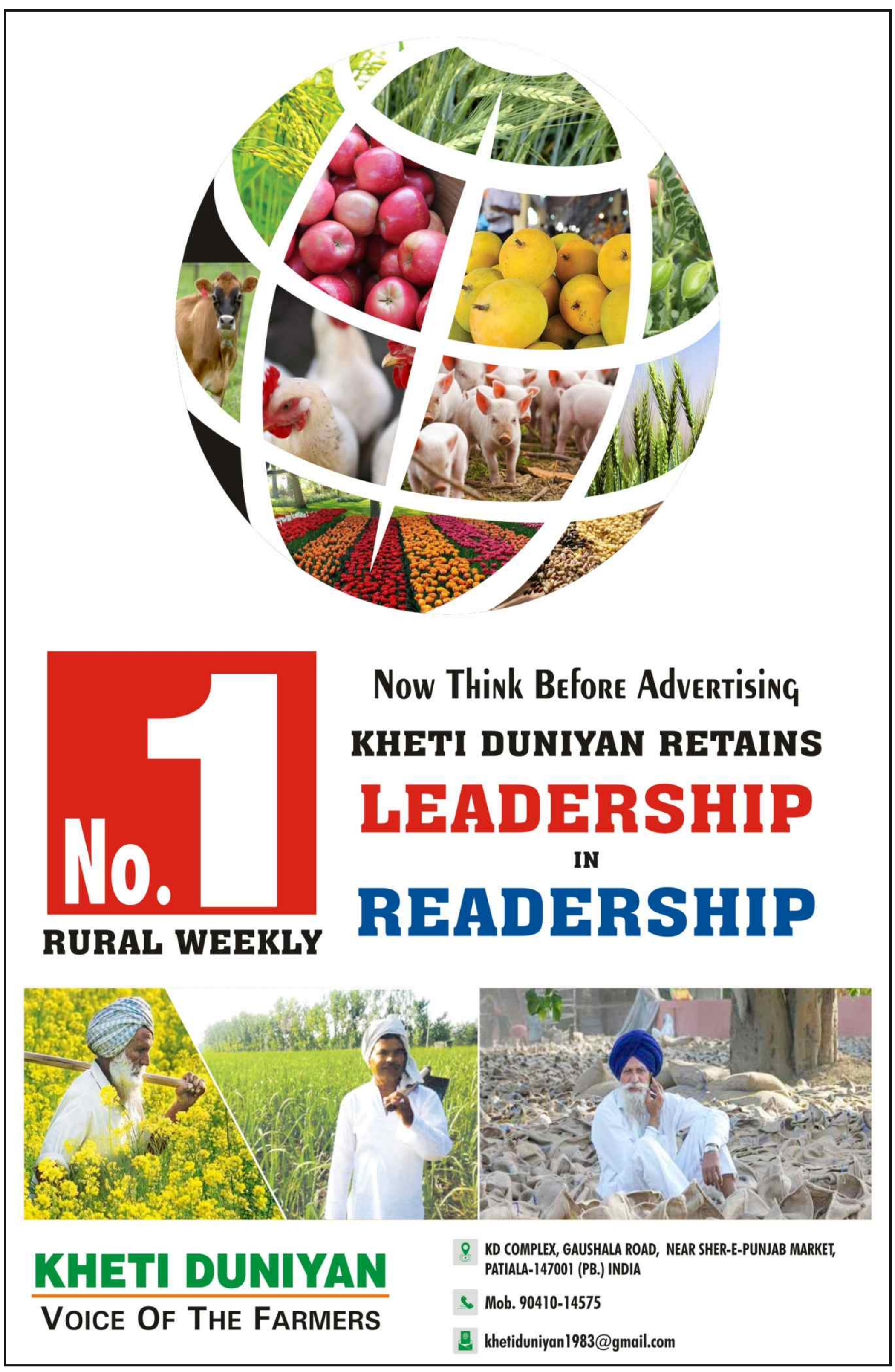

कम पानी में कद्दूवर्गीय सब्ज़ियों के लिए लो-टनल तकनीक

पुष्पेन्द्र प्रताप सिंह, एस.के. महेश्वरी, अजय वर्मा,
पी.एल. सरोज और अजय हलदार, भारतीय कृषि अनुसंधान
परिषद-केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर-334006 (राजस्थान)

लो-टनल या रो कवर्स संरक्षित खेती में अच्छा उत्पादन लेने की एक तकनीक है। अपेक्षाकृत बहुत कम लागत में तैयार हो जाती है तथा थोड़े समय (3-4 महीने) में इससे मुनाफा कमा सकते हैं। इसमें खेतों में धोरेनुमा क्यारियां बना कर उन पर विशेष तरह से सुरंग का आकार देते हुए प्लास्टिक को लगाया जाता है। इसमें प्लास्टिक की 200 माइक्रॉन फिल्म लगानी उचित है। इस तकनीक से हम एक तरह की पॉलीटनल यानी एक लोहे का सरिया, बांस की डंडियों की सहायता से सुरंग का निर्माण करते हैं। इसकी ऊंचाई 1-1.5 फीट तक रखते हैं तथा लंबाई खेत के आकार के आधार पर रखते हैं। इसमें सुरंग के दोनों सिरों को बंद कर देते हैं, जिसमें समय-समय पर इस प्लास्टिक को ऊंचा करके अपनी फसल में निराई-गुड़ाई, खाद मिलाना आदि क्रियाएं करते हैं। इस सुरंगनुमा भाग में ड्रिप सिस्टम लगा कर उसे ट्यूबवैल से जोड़ दिया जाता है। इसमें करेला, लौकी, खरबूजा, तरबूज, ककड़ी, खीरा, धारीदार तोरई, चप्पन कद्दू, टिंडा, कद्दू की फसल लेने के लिए समय से पूर्व सर्दी के मौसम में ही बुवाई कर दी जाती है। लो-टनल, बुवाई के बाद इन फसलों को सर्दी से बचाने का काम करती है। इसके साथ ही इसके भीतर का वातावरण भी फसल के अनुकूल बना रहता है। ड्रिप सिस्टम से इसमें सिंचाई की जाती है, जिससे पौधों को आवश्यकता अनुसार पूरा पानी मिलता है। इसके साथ ही भाप के रूप में उड़ने वाले पानी को भी प्लास्टिक वायुमंडल में नहीं जाने देती, जिसके कारण टनल में भी नमी बनी रहती है। सर्दी के मौसम में लो-टनल में बोई गई फसलें, समय से पूर्व ही उपज देने लगती हैं। इस प्रकार बेमौसमी सब्ज़ी से किसानों को दोगुनी आय मिलती है।

लो-टनल तकनीक से लाभ :

* इस तकनीक द्वारा कम लागत में किसानों को अधिक उत्पादन एवं लाभ प्राप्त होता है।
* इससे बीजों का जमाव शीघ्र होता है तथा पौधों की समुचित बढ़वार में कम समय लगता है।
* विपरीत मौसम, अधिक गर्मी, ठंड, ओला वृष्टि से पौधों की क्षति नहीं होती।
* इस तकनीक से खेती करने पर कीटों एवं रोगों का अपेक्षाकृत प्रकोप कम होता है।

उन्नत किस्में :

लौकी : पूसा सन्तुष्टि, पूसा समृद्धि, पूसा सन्देश, काशी गंगा, काशी बहार, पूसा नवीन, पूसा हाईब्रिड-3, एन.डी.वी.एच.-4

करेला : पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, पूसा हाईब्रिड-2, काशी उर्वशी, अर्का हरित

खीरा : पूसा उदय, पूसा बरखा, पी.सी.यू.सी.एच.-1

कद्दू : पूसा विश्वास, पूसा विकास, ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, काशी हरित, पूसा हाईब्रिड-1, पूसा अलंकार हाईब्रिड

खरबूजा : पूसा मधुरस, पूसा शर्बती, हरा मधु, दुर्गापुरा मधु, पंजाब सुनहरी

तरबूज : शूगर बेबी, अर्का मानिक, थार मानक

टिंडा : पंजाब टिंडा, अर्का टिंडा

छप्पन कद्दू : ऑस्ट्रेलियन ग्रीन, पैटीपेन, अर्ली येलो, प्रोलिफिक, पूसा अलंकार

धारीदार तोरई : पूसा नसदार, सतपुतिया, पूसा नूतन

तोरई : पूसा स्नेहा, पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी, काशी दिव्या

उत्पादन तकनीक : यह तकनीक राजस्थान के गर्म शुष्क क्षेत्रों में कद्दूवर्गीय सब्ज़ियों की अगेती खेती के लिए उपयोगी है, जहां सर्दी के मौसम में रात का तापमान बहुत अधिक गिर जाता है। लो-टनल तकनीक से फसल निम्न तापमान व पाले से सुरक्षित रहती है। इसमें जनवरी में बीजों की बुवाई ड्रिप युक्त नाली (ट्रेंच) में करते हैं। इसको प्लास्टिक की चादर से ढक देते हैं, जिससे कद्दूवर्गीय सब्ज़ियों को उनके सामान्य समय से पहले उगाना संभव है। इससे सामान्य दशाओं की फसल की तुलना में यह फसल 30-40 दिनों पहले तैयार हो जाती है। दिसम्बर के अंत में खेत में फसल के अनुसार 2-2.5 मीटर की दूरी पर 45 सैंटीमीटर चौड़ी तथा 45 से 60 सैंटीमीटर गहरी नालियां पूर्व से पश्चिम दिशा में बनाते हैं। इन नालियों में सड़ी गोबर की खाद तथा रासायनिक उर्वरकों की बोई जाने वाली फसल के लिए संतुलित मात्रा मिला देनी चाहिए। पानी में घुलनशील नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश तथा सूक्ष्म तत्वों के मिश्रण को ड्रिप द्वारा सिंचाई के साथ भी फसल में दे सकते हैं। नाइट्रोजन की अधिक मात्रा देने से बचना चाहिए, अन्यथा पौधों की वनस्पतिक बढ़वार अधिक होगी। इसके परिणामस्वरूप फलत कम होगी। सिंचाई के लिए 4 लीटर प्रति घंटा पानी के डिस्चार्ज वाली 12-16 मिलीलीटर आकार वाली ड्रिप पाइप (लेटरल), जिन पर 60 सैंटीमीटर की दूरी पर ड्रिपर लगे हों, नालियों में बिछा देनी चाहिए।

बुवाई करने से पूर्व बीजों का अंकुरण करवाना आवश्यक है। जनवरी में कम तापमान के कारण इनका अंकुरण देर से होता है। अंकुरण के लिए बीजों को पानी में भिगोना चाहिए। पानी में भिगोने की अवधि बीज के छिलके की मोटाई पर निर्भर करती है। 3-4 घंटा खरबूजा एवं खीरा, 6-8 घंटे लौकी एवं तोरई, 10-12 घंटा टिंडा, तरबूज, खरबूजा है। भिगोने के बाद बीज को कैप्टान 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करना चाहिए। इसके बाद बोरों के टुकड़े में लपेट कर गर्म स्थान जैसे बिना सड़ी हुई गोबर की खाद में दो-तीन दिनों तक दबाने से बीजों का अंकुरण शीघ्र हो जाता है। अंकुरित बीजों की बुवाई तैयार नालियों में जनवरी के प्रथम सप्ताह में कर देनी चाहिए। एक ड्रिपर के पास कम से कम दो बीजों की बुवाई करते हैं। प्लास्टिक से ढकने से नालियों के अंदर का तापमान सामाय से 8-10 डिग्री सैल्सियस अधिक बना रहता है। इससे बीजों का अंकुरण जल्दी हो जाता है तथा पौधों का विकास भी सुचारू रूप से होता है। फरवरी के दूसरे सप्ताह में मौसम का तापमान बढ़ जाता है, तो प्लास्टिक को हटा कर खरपतवार को निकाल देना चाहिए। प्लास्टिक की टनल को कभी भी एकदम से नहीं हटाना चाहिए। ऐसा करने से पौधों को धक्का लगता है तथा वे मुरझा जाते हैं, जिससे उनकी वानस्पतिक वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। प्लास्टिक को शाम के समय तापमान कम होने पर हटाना चाहिए तथा अगले दिन सुबह पौधों को फिर प्लास्टिक से ढक देना चाहिए। यह प्रक्रिया 2-3 दिनों तक करने से पौधों में कठोरीकरण आ जाता है तथा पौधे, मौसम के अनुकूल ढल जाते हैं। पौधों की वानस्पतिक वृद्धि के दौरान पंक्तियों के सापेक्ष सरकंडा लगा देते हैं, जिससे प्रतिकूल या तेज़ हवाओं से पौधों को बचाया जा सके। इस प्रकार की तकनीकी से बोई गई फसल सामान्य दशा में 40-50 दिनों पहले तैयार हो जाती है, जिसे बाज़ार में अच्छा भाव मिलता है। इससे प्रति हैक्टेयर 1 से 1.5 लाख तक आमदनी प्राप्त की जा सकती है।

कद्दूवर्गीय फसलों के प्रमुख कीट एवं रोग

रेड पम्पकिन बीटल : इस कीट के शिशु व वयस्क दोनों ही फसल को हानि पहुंचाते हैं। वयस्क कीट पौधों की पत्तियों में टेढ़े-मेढ़े छेद करते हैं, जबकि शिशु पौधों की जड़ों में भूमिगत तने व भूमि से सटे फलों तथा पत्तियों को नुकसान पहुंचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कार्बोरिल 50 डब्ल्यू.पी. 2 ग्राम प्रति लीटर या एमामेक्टिन बेंजोएट 5 एस.जी. 1 ग्राम प्रति 2 लीटर या इंडोक्साकार्ब 14.5 एस.सी. 1 मिलीलीटर प्रति 2 लीटर का घोल बना कर छिड़काव करें।

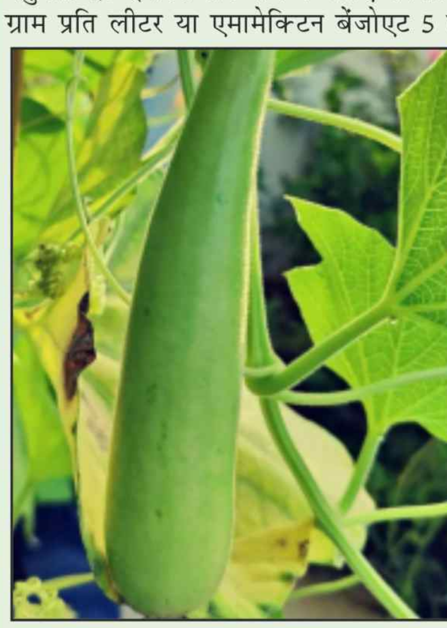

फल मक्खी : रोकथाम : मैलाथियान 0.02 प्रतिशत (200 मिलीलीटर/ग्राम प्रति लीटर) का घोल बना कर छिड़काव करें।

मृदु रोमिल आसिता : इसकी वजह से पत्तियों के ऊपरी भाग पर पीले धब्बे तथा निचले भाग पर बैंगनी रंग के धब्बे दिखाई देते हैं।

रोकथाम : डाइथेन ज़ैड-78 के 0.2-0.3 प्रतिशत (2-3 ग्राम प्रति लीटर) का घोल बना कर छिड़काव करें।

चूर्णिल आसिता : यह एक कवकजनित रोग है। इससे ग्रसित पौधों पर सफेद चूर्णिल धब्बे दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप की दिशा में पत्तियां गिर जाती हैं और पौधा मुरझा जाता है।

रोकथाम : रोग ग्रसित पत्तियों को काट कर पौधों से अलग कर देना चाहिए, इस रोग के लक्षण दिखने पर 0.1 प्रतिशत कार्बेन्डाज़िम या 0.05 प्रतिशत हेक्साकोनेज़ॉल का 10-15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

मौज़ेक रोग : यह एक विषाणु जनित रोग है, जो एफिड या माहू के माध्यम से फैलता है। इस रोग से प्रभावित पत्तियों की लंबाई व चौड़ाई कम रह जाती है तथा फलों का रंग व आकार भी प्रभावित होता है।

नियंत्रण : * रोगरोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए।

* पौधों में रोग के लक्षण दिखाई देते ही उखाड़ कर जला देना चाहिए।
* इस रोग के माध्यम से माहू कीट के नियंत्रण के लिए 1.5 मिलीमीटर मैटासिस्टॉक्स प्रति लीटर पानी के घोल का 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 बार छिड़काव करना चाहिए।

शीत ऋतु में बकरियों का प्रबंधन

पूरे विश्व में बकरी-पालन एक महत्वपूर्ण रोज़गार के रूप में उभर कर आ रहा है, जिसका प्रमुख कारण बकरी-पालन शुरू करने पर होने वाली कम लागत और ज्यादा आमदनी है। यदि बकरी-पालन की अन्य पशु-पालन के साथ तुलना की जाए, तो बकरी-पालन बहुत ही आसान और लाभकारी है। जितने खर्चे में पशु-पालक एक देसी गाय पालता है, उतने खर्चे में बड़ी आसानी से 3 या 4 बकरियां सहजता से ही पाली जा सकती है। आकार में

छोटा जानवर होने के कारण बकरी-पालन का अधिकतर कार्य, परिवार के अन्य सदस्य जैसे कि महिलाएं तथा बच्चे भी कर सकते है।

बकरी-पालन पुरातन समय से चरवाहों के साथ जुड़ा रहा है, जोकि चारागाहों, खाली ज़मीनों या सड़क के इर्द-गिर्द कुदरती तौर पर उत्पन्न हुए पौधों पर घुमा कर बकरियों का निर्वाह करते थे, परन्तु आजकल चारागाहों की कमी होने के कारण, बकरियों तथा मेमनों में ज्यादा बीमारियां होने के कारण तथा कम उत्पादन होने के कारण, बकरियों को खुरली प्रणाली द्वारा पालने की सिफारिश की जाती है। खुरली प्रणाली में बकरियों में चराने वाली प्रणाली के मुकाबले ज्यादा दूध का उत्पादन होता है, मेमने कम आयु में ज्यादा वज़न हासिल करते है तथा प्रबंधन आसानी से किया जा सकता है।

हमारे प्रांत में शीत ऋतु का आगमन हो चुका है। ठंडी हवाओं के बहने के साथ-साथ दिन भी छोटे होते जा रहे हैं। अगर पशु-पालक मौसम के अनुसार सही प्रबंधन करे, तब ही ज्यादा से ज्यादा उत्पादन हो सकता है तथा आर्थिक उन्नति हो सकती है। शीत ऋतु में बकरियों के लिए निम्नलिखित प्रबंध करें :

1. कई पशु-पालक यह सोचते है कि बकरी प्राकृतिक रूप से एक कठोर जानवर है, जिसे किसी खास प्रबंधन की आवश्यकता नहीं है। परन्तु ऐसी सोच सरासर गलत है। सर्दियों में सबसे महत्वपूर्ण दिशा-निर्देश बकरियों के लिए सही रिहाईशी प्रबंध है। जो बकरी-पालक बकरियों के लिए उचित रिहाईश का प्रबंध नहीं करते तथा बकरियों को बाहर खुले बरामदे में ही रखते है, उन बकरियों में ज्यादा बीमारियां दर्ज होती है तथा कई बार तो मृत्यु तक भी हो सकती है। सो बकरियों के लिए शैड ज़रुर बनाएं। शैड की लम्बाई पूर्व से पश्चिम रखें और चौड़ाई उत्तर-दक्षिण रखें, इससे सर्दियों में, शैड के अंदर ज्यादा धूप आएगी तथा शैड ज्यादा गर्म और सूखा रहेगा। ग्रीष्म ऋतु में शैड जितना हवादार होना ज़रुरी है, उतना सर्दियों में बंद होना भी ज़रुरी है। सर्द ऋतु में शैड में रखे गए खिड़कियों तथा झरोखे को किसी मोटी तरपाल से ढक दें। शैड को इतना ज्यादा भी बंद ना करें कि शैड में गैस बनने से बकरियों का दम घुटने लगे। हवा की निकासी का सही प्रबंध करें। बस बकरियों पर सीधी ठंडी हवा ना पड़े। कई बकरी-पालक बकरियों को एक बंद कमरे में खचा-खच भर देते हैं, जोकि सरासर गलत है। एक वयस्क बकरी, बकरे तथा मेमने को क्रमवार 15, 20 तथा 7 वर्ग फुट प्रति पशु छत वाली जगह की ज़रुरत होती है। छत वाली जगह से दोगुनी जगह का खुला बरामदा भी बनाना चाहिए। सो, एक वयस्क बकरी, बकरे तथा मेमने को क्रमवार 30, 40 तथा 15 वर्ग फुट प्रति पशु खुला बरामदा प्रदान करें।

2. छोटे बच्चों में मृत्यु दर सर्दियों में ज्यादा होती है। अत: छोटे बच्चों को अलग से कमरे में रखना चाहिए। कमरों में गर्मी उत्पन्न करने के लिए गर्म बल्ब, बिजली या गैस वाले हीटर का प्रयोग किया जा सकता है। नवजात मेमनों को सर्दियों में रात्रि के समय सेबों की खाली पेटी, बांसों से बनी पेटी या प्लाईवुड से बनी पेटी में रखने से सर्दी के दुष्प्रभाव को कम किया जा सकता है। इन पेटियों में पराली बिछा कर भी गर्मी प्रदान की जा सकती है।

3. बकरियों के बैठने वाली जगह पर भी साफ तथा सूखी बिछाई का प्रबंध करें। ऐसा करने से बकरियों को फर्श द्वारा लगने वाली ठंड से बचाव होता है। ध्यान

रखें कि बिछाई गंदी ना हो। गीली तथा गंदी बिछाई कई बीमारियों का कारक बन सकती है।

4. बकरियों का सही शारीरिक तापमान 101-103 डिग्री फारनहीट होनाचाहिए। सर्द ऋतु में बकरियों को अपना शारीरिक तापमान बनाए रखने की आवश्यकता एक बड़ी चुनौती बनी रहती है। बकरियों में ठंड लगने के प्रमुख लक्षण - नाक तथा आंख से पानी का आना, कंपकपी लगना तथा भूख कम लगना है। हम ठंड को तो कम नहीं कर सकते, लेकिन सही प्रबंधन द्वारा ठंड के प्रभाव को कम कर सकते है। अगर किसी बकरी में उपरोक्त लक्षण नज़र आएं, तो तुरंत माहिर पशु चिकित्सक (वेटरनरी डॉक्टर) के साथ संपर्क करें।

5. सर्द ऋतु में बकरियों को शैड से सुबह जल्दी ना निकालें, धूप निकलने पर ही शैड से बाहर निकालें। ध्यान रखें कि बकरियों को दिन में कम से कम चार घंटे समय की रोशनी मिले।

6. वैसे तो बकरियां सूखा चारा/हेअ बड़े शौक से खाती हैं। सर्दियों के फलीदार चारों का हेअ बड़ी आसानी से बनाया जा सकता है। सर्दियों में उपलब्ध फलीदार हरे चारे (जैसे कि बरसीम, लूसन, शफतल आदि) तथा गैर-फलीदार हरे चारे (जैसे कि राई घास, जौं इत्यादि) को बराबर अनुपात में मिला कर दें।

7. सर्दियों के समय बकरियों में जूएं तथा घुन की संभावना बढ़ जाती है, जिनके उच्च संक्रमण से बकरियों में खून की कमी तथा त्वचा संबंधित रोग बढ़ जाते है। इनसे बचाव के लिए नजदीकी पशु चिकित्सक से परामर्श लें।

8. सर्दियों के ठंडे और नम मौसम में बकरियों के खुर बनाने चाहिए, ताकि खुरों में होने वाली समस्याओं, जैसे कि खुरों की खराबी, खुरों में सड़न से बचा जा सके।

9. पीने वाला पानी सदैव गुनगुना और ताज़ा होना चाहिए। पानी के टैंक में रात का बचा पानी बकरियों को नहीं पिलाना चाहिए। सर्दियों के मौसम में बकरियां ठंडा पानी पीने से डरती हैं। ठंडा पानी पीने से बकरियों में कई बीमारियों के होने की संभावना बढ़ जाती है।

उम्मीद है कि उपरोक्त दिशा-निर्देशों की पालना करके बकरी-पालक लाभान्वित होंगे और बकरी-पालन व्यवसाय से अधिक मुनाफा हासिल करेंगे।

हरी फलियों का पौष्टिक महत्व

सब्ज़ियां आहार को रंग, स्वाद, खुशबू व विभिन्नता प्रदान करती हैं। हरी फलियां सब्ज़ियों का एक मुख्य भाग है। हरी फलियों के उत्पादन में चीन प्रथम स्थान पर है। सके बाद इंडोनेशिया, तुर्की तथा भारत का नम्बर आता है। भारत में इसका उत्पादन 4,20,000 टन है। हमारे देश में इसका उत्पादन कच्ची फलियों, दाल तथा पशुओं के चारे के लिए किया जाता है। ये मानवीय उपभोग के साथ-साथ पशुओं के चारे के रूप में भी प्रयोग की जाती है। हरी कच्ची फलियां पौधों से तोड़ कर सीधे भोजन के लिए उपयोग की जाती है। यदि इन्हें पौधे पर ही पकने के लिए छोड़ दिया जाए, तो उनके बीजों को दाल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। जो सूखे बीज मानवीय भोजन के लिए उचित नहीं होते, उन्हें पशुओं के चारे में उपयोग किए जाते हैं। हरी फलियों में बीज विकसित होने से पहले ही उन्हें तोड़ लेना चाहिए। यह पौष्टिकता एवं व्यवसायिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, क्योंकि उचित समय पर तोड़ी गई फलियां अधिक मुनाफा व पौष्टिकता प्रदान करती है।

हरी फलियां पोषण का उचित साधन है, जो पूरा साल बाज़ार में उपलब्ध होती हैं, मुख्यत: बरसात

के दिनों में बहुतायता में पाई जाती है। हरी फलियों में कार्बोज व ऊर्जा कम तथा प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण, रेशा, एंटी-कैसर, एंटी ऑक्सिडैंटस, फाइटो न्यूट्रीयन्टस, केरोटीनोअड्स तथा माइक्रो न्यूट्रीयन्टस पाए जाते है। फलियों में उत्तम प्रकार का विटामिन ऐ, बी व सी पाया जाता है। हरी फलियां कम आय वाले वर्ग के लिए प्रोटीन का एक उत्तम साधन है। हरी फलियां खनिज लवण मुख्यत: कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा, ज़िंक, मैग्नीशियम, मैगनीज तथा पोटाशियम का बहुत अच्छा साधन है। फलियों में ज़िंक अधिक मात्रा में पाया जाता है, जोकि स्वस्थ त्वचा के लिए आवश्यक है। इनके पाचन के बाद कम ग्लूकोज़ उत्पन्न होता है। इसलिए मधुमेह रोग में फलियां महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हरी फलियों में रेशा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जोकि कोलेस्ट्रोल के स्तर को कम रखता है। रेशा कैंसर पैदा करने वाले तत्वों के साथ जुड़ जाते है तथा इससे पहले कि वो कैंसर पैदा करें, उन्हें हमारे शरीर से बाहर निकाल देते है। फलियां स्वस्थ तरीके से वज़न घटाने व उचित स्तर को बनाए रखने में भी सहायक है। अपनी उचित पौष्टिकता के आधार पर ही हरी फलियां बहुत सी बीमारियों में लाभकारी है।, जिसमें अल्ज़िमायर, हृदय संबंधी रोग, अस्थमा, जोड़ों का दर्द, कान के रोग तथा ज़ुकाम होना सम्मिलित है।

हरी फलियों में गुआर फली, फ्रांस फली, लोबिया तथा सेम की फलियां स्थानीय बाज़ार में आसानी से उपलब्ध होती है। फलियों की उत्तम पौष्टिकता और अच्छे स्वाद के कारण ही ये हमारे आहार का एक अभिन्न भाग हैं। हरी फलियां देखने में आकर्षक, रंगीन, पौष्टिक और भोजन में विभिन्नता लाने वाली होती हैं। इनके भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यंजन बनाए जा सकते हैं। केवल फलियों की ही या फलियों को आलू के साथ मिला कर सब्ज़ी बनाई जाती है। हरी फलियों को पुलाव, कढ़ी और मिक्स सब्ज़ी में भी प्रयोग किया जाता है। कच्ची फलियों को सलाद के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। हरी फलियों को काट कर, सुखा कर उनका पाउडर बनाया जाता है। इस पाउडर को पांच प्रतिशत तक मटर, सेव, ढोकला व बिस्कुट जैसे व्यंजनों में मिलाया जा सकता है। फलियों का पाउडर मिलाने से इन व्यंजनों का पोषक मान बढ़ जाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की फलियों से कई तरह के व्यंजन बना कर हम अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन, खनिज लवण, रेशा या अन्य पौष्टिक तत्व उचित मूल्य पर प्राप्त कर सकते हैं। एक संतुलित आहार प्राप्त करने के लिए हमें अपने दैनिक आहार में हरी फलियों को किसी ना किसी रूप में अवश्य प्रयोग करना चाहिए।

ममता रानी व दर्शन पुनिया

पशुओं के कृत्रिम गर्भाधान में सावधानियां

मादा पशु को कृत्रिम तरीके से गाभित करना ही कृत्रिम गर्भाधान कहलाता है। अर्थात कृत्रिम विधि से नर पशु से वीर्य एकत्रित करके मादा पशु की प्रजनन नली में रखने की प्रक्रिया को कृत्रिम गर्भाधान कहते हैं। भारत में सन् 1939 में पैलेस डेयरी फार्म मैसूर में कृत्रिम गर्भाधान का प्रथम प्रयोग किया गया था। इस प्रयोग में प्रमुख भूमिका संपत कुमारन ने निभाई थी। आज संपूर्ण भारत वर्ष तथा विश्व में पालतू एवं घरेलू पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान की विधि अपनाई जा रही है।

गर्भाधान का उचित समय व सावधानियां :- पशु के मदकाल का द्वितीय अर्ध भाग कृत्रिम गर्भाधान के लिए उपयुक्त होता है। सामान्यत: गर्भाधान के लिए सुबह-शाम का नियम अनुसरण करना चाहिए। इस नियम के अनुसार अगर मादा पशु सुबह गर्मी में आया हो तो शाम तक गर्भाधान कराना चाहिए और यदि शाम को गर्मी में आये तो अगली सुबह को गर्भाधान करवाना चाहिए। पशुके ब्याने के 50-60 दिनों के बाद ही पशु में गर्भाधान करना उचित रहता है, क्योंकि उस समय तक ही पशु का गर्भाशय पूर्णत: सामान्य अवस्था में आ पाता है। प्रसव के 2-3 माह के अंदर पशु को गर्भधारण कर लेना चाहिए ताकि 12 महीनों के बाद गाय तथा 14 महीनों के बाद भैंस दोबारा बच्चा देने में सक्षम हो सके, क्योंकि यही सिद्धांत दुधारू पशुपालन में सफलता की कुंजी है। पशु को गर्भाधान के लिए लाते व ले जाते समय डराना या मारना नहीं चाहिए, क्योंकि इससे गर्भधारण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। गर्भाधान करवाने से पहले तथा बाद में 20-30 मिनट तक पशु को छायादार स्थान पर आराम देना चाहिए। गर्भाधान करवाने से पहले पशु के पीछे वाला हिस्सा अच्छे से साफ करना चाहिए। कृत्रिम गर्भाधान हमेशा प्रशिक्षित पशु चिकित्सक अथवा पशुधान सहायक से ही करवाना चाहिए। अगर संभव हो तो कृत्रिम गर्भाधान पशु चिकित्सायल में ही करवाएं।

गर्भाधान के लाभ :- प्राकृतिक गर्भाधान की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान के अनेक लाभ हैं, जिनमें प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं।

* कृत्रिम गर्भधान तकनीक द्वारा श्रेष्ठ गुणों वाले सांड को अधिक से अधिक प्रयोग किया जा सकता है। प्राकृतिक विधि में एक सांड द्वारा एक वर्ष में 50-60 गाय या भैंस को गर्भित किया जा सकता है, जबकि कृत्रिम गर्भाधान विधि द्वारा एक सांड के वीर्य से एक वर्ष में हजारों की संख्या में गायों या भैंसों को गर्भित किया जा सकता है।

* इस विधि में धन एवं श्रम की बचत होती है, क्योंकि पशु पालक को सांड पालने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

* कृत्रिम गर्भाधान में बहुत दूर यहां तक कि विदेशों में रखे उत्तम नस्ल व गुणों वाले सांड के वीर्य को भी गाय व भैंसों में प्रयोग करके लाभ उठाया जा सकता है।

* अत्योत्तम सांड के वीर्य को उसकी मृत्यु के बाद भी प्रयोग किया जा सकता है।

* इस विधि में उत्तम गुणों वाले बूढ़े या घायल सांड का प्रयोग भी प्रजनन के लिए किया जा सकता है।

* कृत्रिम गर्भाधान में सांड के आाकर या वजन का मादा के गर्भाधान के समय कोई फर्क नहीं पड़ता।

* इस विधि में विकलांग गायों-भैंसों का प्रयोग भी प्रजनन के लिए किया जा सकता है।

* कृत्रिम गर्भाधान विधि में नर से मादा तथा मादा से नर में फैलने वाले संक्रामक कोगरें से बचा जा सकता है।

* इस विधि में सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है, जिससे मादा की प्रजनन की बीमारियों में काफी हद तक कमी आ जाती है तथा गर्भधारण करने की दर भी बढ़ जाती है।

* इस विधि में पशु का प्रजनन रिकार्ड रखने में भी आसानी होती है।

कृत्रिम गर्भाधान विधि की सीमायें :- कृत्रिम गर्भाधान के अनेक लाभ होने के बावजूद इस विधि की अपनी कुछ सीमायें हैं, जो मुख्यत: निम्न प्रकार हैं।

* कृत्रिम गर्भाधान के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति अथवा पशु चिकित्सक की आवश्यकता होती है तथा कृत्रिम गर्भाधान तक्नीशियन को मादा पशु प्रजनन अंगों की जानकारी होना आवश्यक है।

* इस विधि में विशेष यंत्रों की आवश्यकता होती है।

* इस विधि में असावधानी बरतने तथा सफाई का विशेष ध्यान न रखने से गर्भधारण की दर में काफी कमी आ जाती है।

* इस विधि में यदि पूर्ण सावधानी न रखी जाये तो दूरवर्ती क्षेत्रों आथवा विदेशों से वीर्य के साथ कई संक्रामक बीमारियों के आने की भी संभावना रहती है। इस विधि से यह बीमारियां बहुत ही तीव्र एवं व्यापक रूप से फैलती है।

विजाईनल स्पैकुलम विधि की तुलना में रेक्टोविजाईनल विधि के निम्नलिखित प्रमुख लाभ है।

* गुदा में हाथ डाल कर पशु के प्रजनन अंगों का भली प्रकार परीक्षण किया जा सकता है तथा उसकी गर्मी का सही पता लगाया जाता है।

* अनेक बाद गर्भ धारण किए पशु भी गर्मी में आ जाते हैं और उन्हें अज्ञानता में गर्भाधान के लिए ले जाया जाता है। ऐसे पशु का इस विधि द्वारा गर्भ परीक्षण भी हो जाता है और वह व्यर्थ में दोबारा गर्भाधान करके गर्भपात के खतरे से बच जाता है।

* इस विधि में वीर्य को उचित स्थान पर छोड़ा जाता है जिससे वीर्य व्यर्थ में बर्बाद नहीं होता तथा इसमें गर्भधारण की संभावना अधिक होती है।

पशुओं में मिट्टी खाने की समस्या

कई बार पशु-पालक यह समस्या लेकर आते हैं कि उनका पशु ऐसी वस्तुओं को खा जाता है या खाने की कोशिश करता है, जोकि पशुओं को नहीं खानी चाहिए। ये वस्तुएं कई प्रकार की हो सकती हैं, जैसे कि कपड़ा, चमड़ा, कागज़, अखबार, हड्डियां, मिट्टी के खिलौने, मल-मूत्र आदि। इसके अलावा कई बार पशुओं को बार-बार दीवार को चाटते भी देखा गया है। यह एक प्रकार का रोग है, जिसे PICA कहा जाता है।

कारण : पशुओं में मिट्टी खाने की समस्या के कई कारण हो सकते हैं, उनमें से प्रमुख कारण हैं :-

1. पशु के शरीर में खनिज लवणों (फास्फोरस, कैल्शियम, सोडियम क्लोराइड, कोबाल्ट आदि) की कमी होना।

2. पशु के शरीर पर अधिक मात्रा में बाह्य परजीवियों का लगना।

3. पशु के शरीर में अधिक मात्रा में आन्तरिक परजीवियों का होना।

4. पशु के चारे में प्रोटीन युक्त पदार्थों की कमी होना।

5. पशु की पाचन क्रिया का लम्बे समय तक खराब होना।

कई बार सामान्य पशुओं में भी यह रोग पशु की गन्दी आदत के रूप में पाया जाता है।

लक्षण : पशुओं में मिट्टी खाने के कारण विभिन्न प्रकार के दुष्प्रभाव देखने को मिलते हैं।

1. पशु शारीरिक रूप से धीरे-धीरे कमज़ोर होने लगता है।

2. पशु की अन्दरूनी शक्ति जिसे हम रोग-प्रतिरोधक क्षमता कहते हैं, वह कम हो जाती है। इससे पशु के अन्दर आन्तरिक परजीवी एवं शरीर के ऊपर बाह्य परजीवों का प्रकोप बढ़ जाता है।

3. मादा पशुओं में नया दूध ना होने की समस्या हो सकती है।

4. पशुओं की बाह्य त्वचा रूखी हो जाती है एवं भेड़ों में ऊन की मात्रा व गुणवत्ता में कमी आ जाती है।

5. कई पशु दूसरे पशुओं का मूत्र पीते हुए भी देखे जा सकते हैं।

6. शहरों में इस समस्या से ग्रस्त पशुओं का हम मांस से बचे हुए अवशेषों को खाते हुए भी देख सकते हैं।

पहचान : इस रोग की पहचान हम ऊपर दिए हुए लक्षणों के आधार पर कर सकते है। इसके लिए इस रोग के लिए जिम्मेदार कारणों का पता लगाने के लिए पशु के गोबर, पेशाब व खून की जांच प्रयोगशाला में करवाई जा सकती है।

उपचार एवं बचाव : इस समस्या से बचाव हेतु पशु चिकित्सक से परामर्श लेकर निम्न तरीके अपनाने चाहिए :

1. पशु को संतुलित आहार देना चाहिए, जिसमें खनिज लवण की उचित मात्रा होनी चाहिए।

2. पशु को नियमित रूप से पेट के कीटों की दवाई देनी चाहिए।

3. बाह्य परजीवों से बचाव के लिए पशु को 1 मिलीलीटर साइपरमैथरिन को 1 लीटर पानी में डालकर नहलाना चाहिए।

4. पशु को साफ पानी पिलाना चाहिए।

5. इस आदत से छुटकारा पाने के लिए पशु को छींकी भी लगाई जा सकती है।

गेंदा की लाभदायक खेती

गेंदा बहुत ही उपयोगी एवं आसानी से उगाया जाने वाला फूलों का पौधा है। मुख्य रूप से सजावटी फसली है। गेंदा पीले रंग का फूल है। वास्तव में गेंदा एक फूल न होकर फूलों का गुच्छा होता है, लगभग उसकी हर पत्ती एक फूल है। गेंदा का वैज्ञानिक नाम टैजेटस स्पीसीज है। भारत के विभिन्न भागों में, विशेषकर मैदानों में व्यापक स्तर पर उगाया जा रहा है। मैक्सिको तथा दक्षिण अमेरिका मूल का पुष्प है। हमारे देश में गेंदे के लोकप्रिय होने का कारण है। इसका विभिन्न भौगोलिक जलवायु में सुगमतापूर्वक उगाया जा सकता है। मैदानी क्षेत्रों में गेंदे की तीन फसलें उगाई जाती हैं, जिससे लगभग पूरे वर्ष उसके फूल उपलब्ध रहते हैं। उत्तर भारत के राज्य हिमाचल प्रदेश में छोटे किसान भी गेंदे की फसलों को सजावट तथा मालाओं के लिए उगाते हैं।

जयनारायण शर्मा
रीवा (म.प्र.)

इतिहास :- 16वीं शताब्दी की शुरूआत में ही गेंदा, मैक्सिको से विश्व के अन्य भागों में प्रसारित हुआ। गेंदे के पुष्प का वैज्ञानिक नाम टैजेटस एक गंधर्व टैजस के नाम पर पड़ा है, जो अपने सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध था। अफ्रीकन गेंदे का स्पेन में सर्वप्रथम प्रवेश सोलहवी शताब्दी में हुआ और यह रोज आफ दी इंडीज नाम से समस्त दक्षिणी यूरोप में प्रसिद्ध हुआ। फ्रेंच गेंदे का भी विश्व में प्रसार अफ्रीकन गेंदे की भांति ही हुआ।

गेंदे का विवरण :- गेंदे को विभिन्न प्रकार की भूमियों में उगाया जा सकता है। इसकी खेती मुख्य रूप से बड़े शहरों के पास जैसे: मुम्बई, पुणे, बैंगलोर, सैसूर, चेन्नई, कलकत्ता और दिल्ली में होती है।

उचित वानस्पतिक बढ़वार और फूलों के समुचित विकास के लिए धूप वाला वातावरण सर्वोत्तम माना गया है। उचित जल निकास वाली बालूवार दोमट भूमि इसकी खेती के लिए उचित मानी गई है। भारत में 1,10,000 हैक्टेयर क्षेत्रफल में इसकी खेती की जाती है। इसकी खेती करने वाले मुख्य राज्य कर्नाटक, तमिलनाडु, पश्चिमी बंगाल, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र है। पारंपरिक फूल जिनके गेंदा का लालबाग तीन चौथाई भाग है। जिस भूमि का पी.एच. मान 7 से 7.5 के बीच हो, वह भूमि गेंदे की खेती के लिए अच्छी रहती है। क्षारीय व अम्लीय मृदा, इसकी खेती के लिए बाधक पाई गई है।

बीज :- संकर किस्मों में 700-800 ग्राम बीज प्रति हैक्टेयर तथा अन्य किस्मों में लगभग 1. 25 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टेयर पर्याप्त होता है। उत्तर प्रदेश में बीज मार्च से जून, अगस्त-सितंबर में बुवाई की जाती है।

सुगंध :- गेंदे की सुगंध बहुत मंद गंध, कस्तूरी गंध, लकड़ी जैसी होती है।

मृदा (मिट्टी) :- गेंदे की खेती विभिन्न प्रकार की मृदा में की जा सकती है। वैसे गहरी मृदा उर्वरायुक्त मुलायम जिसकी नमी ग्रहण क्षमता उच्च हो तथा जिसक जल निकास अच्छा हो उपयुक्त रहती है। विशेष रूप से बलुई-दोमट मृदा जिसका पी.एच. 7.0-7.5 सर्वोत्तम रहती है।

जलवायु :- गेंदे की खेती संपूर्ण भारतवर्ष में सभी प्रकार की जलवायु में की जाती है। विशेषतौर से शीतोष्ण और सम-शीतोष्ण जलवायु उपयुक्त होती है। नमीयुक्त खुले आसमान वाली जलवायु इसकी वृद्धि एवं पुष्पन के लिए बहुत उपयोगी है, लेकिन पाला इसके लिए नुकसानदायक होता है। इसकी खेती सर्दी, गर्मी एवं वर्षा तीनों मौसमों में की जाती है। इसकी खेती के लिए 14. 5-28.6 डिग्री से तापमान फूलों की संख्या एवं गुणवत्ता के लिए उपयुक्त है, जबकि उच्च तापमान 26.2 डिग्री से. से 36.2 डिग्री से. पुष्पोत्पादन पर विपरीत प्रभाव डालता है।

किस्मों का चुनाव

अफ्रीकन गेंदा :- पूसा नारंगी गेंदा, पूसा बसंती गेंदा, अलास्का, एप्रिकॉट, बरपीस मिराक्ल, बरपीस ह्वाईट, क्रेकर जैक, क्राऊन ऑफ गोल्ड, कूपिड, डबलून, फ्लूसी रफल्स, फायर ग्लो, जियाण्ट सनसेट, गोल्डन एज, गोल्डन क्लाइमेक्स जियांट, गोल्डन जुबली, गोल्डन मेमोयमम, गोल्डन येलो, गोल्डस्मिथ, हैपिनेस, हवाई, हनी कॉम्ब, मिमूनलाइट, ओरेन्ज जूबली, प्रिमरोज, सोबेरेन, रिवरसाइड, सन जियांट्स, सुपर चीफ, डबल, टेक्सास, येलो क्लाइमेक्स, येलो फ्लफी, येलोस्टोन, जियांट डबल अफ्रीकन ओरेंज, जियांट डबल अफ्रीकन येलो इत्यादि।

हाइब्रिड्स :-अपोलो, क्लाइमेक्स, फर्स्ट लेडी, गोल्ड लेडी, ग्रे लेडी, मून सोट, ओरेंज लेडी, शोबोट, टोरियडोर, इनका येलो, इन्का येलो, इन्का गोल्ड, इन्का ओरेंज इत्यादि।

फ्रेंच गेंदा

सिंगल :- डायंटी मेरियटा, नॉटी मेरियटा, सन्नी, टेट्रा रफल्ड रेड इत्यादि।

डबल :- बोलेरो, बोनिटा, ब्राउनी स्कॉट, बरसीप गोल्ड नगेट, बरसीप रेड एंड गोल्ड, बटर स्कॉच, कारमेन, कूपिड येलो, एल्डोराडो, फोस्टा, गोल्डी, जिप्सी डवार्फ डबल, हारमनी, लेमन ड्राप, मेलोडी, मिडगेट हारमनी, ओरेंज फ्लेम, पेटाइट गोल्ड, पेटाइट हारमनी, प्रिमरोज क्लाइमेक्स, रेड ब्रोकेड, रस्टी रेड, स्पेनिश ब्रोकेड, स्पनगोल्ड, स्प्री, टेन्जेरीन, येलो पिंमी इत्यादि।

सारी सड़ी हुई गोबर की खाद, फास्फोरस, पोटाश व एक तिहाई भाग यूरिया को मृदा तैयार करते समय अच्छी तरह मिला लें तथा यूरिया की बची हुई मात्रा का एक हिस्सा पौधे खेत में लगाने के 30 दिन बाद व शेष मात्रा उसके 15 दिन बाद छिड़काव करके प्रयोग करें।

बीज शैया तैयार करना :- गेंदे की पौध तैयार करने के लिए बीज शैया तैयार करें, जो कि भूमि की सतह से 15 सें.मी. ऊंची होनी चाहिए ताकि जल का निकास ठीक ढंग से हो सके। बीज शैया की चौड़ाई 1 मीटर तथा लंबाई आवश्यकतानुसार रखें। बीज बुवाई से पूर्व बीज शैया का 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन या कैप्टान से उपचारित करें ताकि पौधे में बीमारी न लग सके और पौध स्वस्थ रहे।

बीजों की बुवाई :- अच्छी किस्मों का चयन कर बीज शैया पर सावधानीपूर्वक बुवाई करें। ऊपर उर्वर मृदा की हल्की परत चढ़कर, फव्वारे से धीरे-धीरे पानी का छिड़काव कर दें।

बीज दर :- 800 ग्राम से 1 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर बीजों का अंकुरण 18 से 30 डिग्री से तापमान पर बुवाई के 5.10 दिन में हो जाता है।

पौध रोपण :- अच्छी तरह तैयार क्यारियों में गेंदे के स्वस्थ पौधों को जिनकी 3.4 पत्तियां हों पौध रोपण हेतु प्रयोग करें। जहां तक संभव हो पौध रोपाई शाम के समय ही करें तथा रोपाई के पश्चात् चारों तरफ मिट्टी को दबा दें ताकि जड़ों में हवा न रहें एवं हल्की सिंचाई करें।

पौधे से पौधे की दूरी

अफ्रीकन गेंदा :- 45 गुणा 45 सैं.मी. या 45 गुणा 30 सैं. मी.

फ्रेंच गेंदा :- 20 गुणा 20 सैं.मी. या 20 गुणा 10 सैं.मी.

सिंचाई :- गेंदा एक शाकीय पौधा है। अतः इसकी वानस्पतिक वृद्धि बहुत तेज होती है। सामान्य तौर पर यह 55.60 दिन में अपनी वानस्पतिक वृद्धि पूरी कर लेता है तथा प्रजनन अवस्था में प्रवेश कर लेता है। सर्दियों में सिंचाई 10-15 दिन के अंतराल पर तथा गर्मियों में 5-7 दिन के अंतराल पर करें।

वृद्धि नियामकों का प्रयोग :- पौधों की रोपाई के चार सप्ताह बाद एस.ए.डी.एच. का 250-2000 पी.पी.एम. पर्णीय छिड़काव करने से पौधों में समान वृद्धि पौधे में शाखाओं के बढ़ने के साथ ही फूलों की उपज व गुणवत्ता भी बढ़ती है।

पिंचिंग (शीर्ष कर्तन) :- पौधे के शीर्ष प्रभाव को खत्म करने के लिए पौध रोपाई के 35-40 दिन बाद पौधों को ऊपर से चुटक देना चाहिए, जिससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है। तने से अधिक से अधिक संख्या में शाखाएं प्राप्त होती हैं तथा प्रति इकाई क्षेत्र में अधिक से अधिक मात्रा में फूल प्राप्त होते हैं।

खरपतवार नियंत्रण :- खरपतवार पौधों की उपज व गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव डालते हैं, क्योंकि खरपतवार मृदा से नमी व पोषण दोनों चुराते हैं तथा कीटों एवं बीमारियों को भी शरण देते हैं। अतः 3-4 बाद हाथ द्वारा मजदूरों से खरपतवार निकलवा दें तथा अच्छी गुढ़ाई कराएं।

खरपतवारों का रासायनिक नियंत्रण भी किया जा सकता है। इसके लिए एनिबेन 10 पौंड, प्रोपेक्लोर और डिफेंनमिड 10 पौंड प्रति हैक्टेयर सुरक्षित एवं संतोषजनक है।

फूलों की तुड़ाई :- पूरी तरह खिले फूलों को दिन के ठंडे, मौसम में यानि कि सुबह जल्दी या शाम के समय सिंचाई के बाद तोड़ें ताकि फूल चुस्त एवं दूरूस्त रहें।

पैकिंग :- ताजा तोड़े हुए फूलों को पॉलीथीन के लिफाफों, बांस की टोकरियों या थैलों में अच्छी तरह से पैक करके तुरंत मंडी भेजें।

उपज :- अफ्रीकन गेंदे से 20-22 टन ताजा फूल तथा फेंच गेंदे से 10-12 टन ताजा फल प्रति हैक्टेयर औसत उपज प्राप्त होती है।

कीट एवं व्याधियां

रेड स्पाइडर माइट :- यह बहुत ही व्यापक कीट है। यह गेंदे की पत्तियों एवंत ने के कोमल भाग से रस चूसता है। इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत मैलाथियान या 0.2 प्रतिशत मेटासिस्टॉक्स का छिड़काव करें।

चेपा :- ये कीट हरे रंग का जूं की तरह होते है और पत्तियों की निचली सतह से रस चूसकर काफी हानि पहुंचाते है। चेपा विषाणु रोग भी फैलाता है। इसकी रोकथाम के लिए 300 मि.ली. डाईमैथोएट 30 ई.सी. या मैटासिस्टॉक्स 25 ई. सी. को 200-300 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टेयर छिड़काव करें। यदि आवश्यकता हो तो अगला छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करें।

व्याधियां व रोकथाम

आर्द्र गलन :- यह बीमारी नर्सरी में पौध तैयार करते समय आती है। इसमें पौधे का तना गलने लगता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत कैप्टान या बाविस्टिन के घोल की ड्रेंचिंग करें।

पत्तों का धब्बा व झुलसा रोग :- इस रोग से ग्रस्त पौधों की पत्तियों के निचले भाग भूरे रंग के धब्बे हो जाते है, जिसकी वजह से पौधों की बढ़ाव प्रभावित होती है। इसकी रोकथाम के लिए डायथेन एम. के 0.2 प्रतिशत घोल का 15.20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

पाऊडरी मिल्डयू :- पत्तियों के दोनों तरफ व तने पर सफेद चूर्ण तथा चकते तथा देते है। जिसकी वजह से पौधा मरने लगता है। इसकी रोकथाम के लिए घुलनशील सल्फर (सल्फैक्स) एक लीटर या कैराथेन 40 ई.सी. 150 मि.ली. प्रति हैक्टेयर के हिसाब से 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

गेंदे के फायदे :- गेंदे की पत्तियों का पेस्ट फोड़े के उपचार में भी प्रयोग होता है। कान दर्द के उपचार में भी गेंदे की पत्तियों का सत्व उपयोग होता है।

- पुष्प सत्व को रक्त स्वच्छक, बवासीर के उपचार तथा अल्सर और नेत्र संबंधी रोगों में उपयोगी माना जाता है।
- टैजेटस की विभिन्न प्रजातियों में उपलब्ध तेल, इत्र उद्योग में प्रयोग किया जाता है।
- गेंदा जलन को नष्ट करने वाला, मरोड़ को कम करने वाला, कवक को नष्ट करने वाला, पसीना लाने वाला, आर्तवजनकात्मक होता है। इसे टॉनिक के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है।
- इसके उपयोग से दर्द युक्त मासिक स्त्राव, एक्जिमा, त्वचा के रोग, गठिया, मुहांसे, कमजोर त्वचा और टूटी हुई कोशिकाओं में लाभ होता है।

पराली समस्या के समाधान के लिए कारगर पहल – सीएचसी मॉडल

सृष्टि जैन

वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग ने लघु और सीमांत किसानों को मुफ्त में मशीनें देने का निर्देश दिया है। इसलिए, सरकार को सीएचसी के परिचालन खर्चों को शामिल करने के लिए पूंजी सब्सिडी का कुछ हिस्सा दोबारा आवंटित करना चाहिए। देश के उत्तरी राज्यों ने खेतों में आग जलाने की घटनाओं को शून्य स्तर तक ले जाने का लक्ष्य रखा है। लेकिन अक्तूबर और नवंबर माह में पराली जलने की घटनाओं से हवा में पार्टिकुलेट मैटर का स्तर राष्ट्रीय मानकों से तीन-चार गुना अधिक हो जाता है। इससे निपटने के लिए भारत सरकार ने सुपर सीडर जैसी लगभग 2.5 लाख फसल अवशेष प्रबंधन मशीनों के वितरण, लगभग 32,800 कस्टम हायरिंग सेंटर (सीएचसी) स्थापित करने और जागरूकता अभियान चलाने जैसे कदमों पर 2800 करोड़ रुपये (2018-24) से अधिक धनराशि खर्च की है। सैद्धांतिक रूप से, ये मशीनें गैर-बासमती धान की संपूर्ण 33 लाख हैक्टेयर खेती के लिए पर्याप्त हैं।

अभी लगभग 40 प्रतिशत मशीनें सीएचसी के माध्यम से संचालित होती हैं, जिनको 80 प्रतिशत मशीनरी सब्सिडी मिलती है। सीएचसी महंगे कृषि उपकरणों को किसानों को रियायती किराए पर देते हैं, जिससे सुपर सीडर जैसी मशीनें उनकी खरीद लागत के सिर्फ 10-33 प्रतिशत खर्च पर मिल जाती हैं। इन लाभों के बावजूद सीएचसी का इस्तेमाल करने की दर काफी कम है। काउंसिल ऑन एनर्जी, एनवायरनमेंट एंड वाटर ने पंजाब के 11 जिलों में किसानों के बीच एक सर्वेक्षण किया था, जिसमें पाया गया कि इन-सीटू पराली प्रबंधन अपनाने वाले पंजाब के 58 प्रतिशत किसानों में से आधे से अधिक किसानों ने किराए की मशीनों का इस्तेमाल किया था, लेकिन इनमें से सिर्फ 15 प्रतिशत किसानों ने ये मशीनें सीएचसी से ली थीं।

मशीनों की समय पर उपलब्धता, बेहतर रखरखाव, मशीनों के गलत इस्तेमाल और मशीनों को लौटाने में देरी जैसे कारणों से किसानों के लिए सीएचसी से मशीनें किराए पर लेना जोखिम भरा सौदा हो जाता है, जो इनका इस्तेमाल घटा देता है। सीईईडब्ल्यू के विश्लेषण से पता चलता है कि 45 एकड़ से कम जमीन वाले किसानों के लिए मशीनों को किराए पर लेना अधिक लाभकारी रहता है। फसल अवशेष प्रबंधन के सतत उपायों को किसान किफायती दरों पर अपना सकें, इसके लिए सर्वप्रथम, सीएचसी के परिचालन खर्च को शामिल करने के लिए सीआरएम कैपिटल सब्सिडी योजना में सुधार करना चाहिए। मशीनों की मरम्मत और रखरखाव पर सीएचसी को बहुत अधिक खर्च करना पड़ता है, जो किराए से उनकी आय का 35-55 प्रतिशत तक होता है। वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग ने लघु और सीमांत किसानों को मुफ्त में मशीनें देने का निर्देश दिया है। इसलिए, सरकार को सीएचसी के परिचालन खर्चों को शामिल करने के लिए पूंजी सब्सिडी का कुछ हिस्सा दोबारा आवंटित करना चाहिए। इससे मशीनों को अच्छे रख-रखाव के साथ किराए पर देने में मदद मिलेगी, जिससे सीएचसी की उच्च सेवा गुणवत्ता सुनिश्चित होगी।

दूसरा, सीएचसी के सर्विस डिलीवरी का आकलन और उच्च प्रदर्शन करने वाले सीएचसी को पुरस्कृत करने के लिए डिजिटल उपकरणों का इस्तेमाल करना चाहिए। अस्सी प्रतिशत मशीनरी सब्सिडी के बावजूद, सीएचसी को आर्थिक रूप से व्यवहार्य बनने के लिए मशीनों को पर्याप्त भूमि पर पराली प्रबंधन में इस्तेमाल करना पड़ेगा। पंजाब के 3 जिलों की 65 सीएचसी में किए गए सीईईडब्ल्यू के अध्ययन के अनुसार, 48,000 रुपये की रियायती दर पर खरीदी गई सुपर सीडर मशीन को अगले पांच वर्षों में अपनी पूरी लागत निकालने के लिए प्रति वर्ष लगभग 105 एकड़ (42 हैक्टेयर) भूमि पर काम करने की जरूरत होती है। कई सीएचसी यह लक्ष्य पूरा नहीं कर पाती हैं और उनके पास सभी मशीनों के उपयोग की जानकारी भी नहीं होती है। चूंकि सभी सीएचसी को सब्सिडी का लाभ मिलता है, लेकिन अनिवार्य रिपोर्टिंग के कारण केवल सहकारी समितियों के पास ही इनकी मशीनरी के उपयोग की जानकारी मिलती है। पंजीकृत किसान समितियों, स्वयं सहायता समूहों, किसान-उत्पादक कंपनियों और ग्राम-स्तरीय उद्यमियों की सीएचसी में इसका रिकॉर्ड नहीं रखा जाता है। सीआरएमपॉसिबल या उन्नत किसान ऐप जैसे मौजूदा संसाधनों को विस्तार देकर मशीनों के इस्तेमाल की जानकारी और किसान के सुझावों के लिए एक केंद्रीकृत सूचना स्रोत बनाया जा सकता है।

तीसरा, सीएचसी को लाभदायक केंद्र बनाने के लिए क्षमता-निर्माण कार्यक्रमों को चलाना चाहिए। सीएचसी को तकनीकी और व्यवसाय प्रबंधन प्रशिक्षण देने के लिए, कृषि और किसान कल्याण विभाग को राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के कौशल विकास केंद्र, राष्ट्रीय ग्रामीण विकास और पंचायती राज संस्थान और भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ जैसे संस्थानों के साथ मिलकर काम करना चाहिए। इससे उन्हें लाभदायक व्यावसायिक केंद्र बनाने में मदद मिलेगी। कुदुम्बश्री और महिला किसान सशक्तीकरण परियोजना जैसे कार्यक्रम, जो स्वयं सहायता समूहों के क्षमता निर्माण और सतत व्यवसाय विकास में मदद करते हैं, इनके लिए मॉडल का काम कर सकते हैं।

अंत में, पुरानी सीआरएम मशीनों के लिए एक इंड-ऑफ- लाइफ मशीन प्रबंधन योजना लानी चाहिए। पुरानी सीआरएम मशीनों को हटाने के लिए एक स्पष्ट प्रक्रिया बनने से सीएचसी को अपने निवेश को कम लाभकारी मशीनों की जगह पर अधिक उत्पादक मशीनों में लगाने की सुविधा मिलेगी। रिसोर्स रिकवरी और प्रदूषण नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित करते हुए, व्हीकल स्क्रैपेज नीति (2021) के आधार पर ऐसी मशीनों को हटाने की योजना बनाई जा सकती है।

सीएचसी मॉडल में क्षमता है कि वह किसानों के लिए सतत और किफायती सीआरएम समाधानों को अंतिम सिरे तक पहुंचा सके। लेकिन सीएचसी को मशीनरी बैंकों के बजाय एक जीवंत व्यावसायिक केंद्रों में बदलने के लिए उनकी प्रणालियों को मजबूत बनाना बहुत जरूरी है, ताकि वे फसल अवशेष प्रबंधन के लिए एक विश्वसनीय, वन-स्टॉप रूरल रिसोर्स के रूप में कार्य कर सकें।

लेखिका काउंसिल ऑन एनर्जी, एनवायरनमेंट एंड वाटर में रिसर्च एनालिस्ट हैं।

...गतांक से आगे

फसल अवरोषों का वैज्ञानिक प्रबंधन

फसल अवशेषों के पुनर्चक्रीकरण का महत्व

कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में वृद्धि :- मिट्टी की सेहत के लिए मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा का विशेष महत्व है। फसल अवशेषों में लिंनिन और सेलुलोज की पर्याप्त मात्रा पाई जाती है, जो कि मिट्टी में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा को बढ़ाने में मदद करता है। फसल अवशेषों के विघटन के फलस्वरूप नाईट्रोजन संपंन अणुजैविक जैव पदार्थ की मात्रा में वृद्धि होती है। रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के फलस्वरूप भूमि में उत्पन्न बहुपोषक तत्वों की

कमी की अनवरत बढ़ती समस्या से निजात पाने के लिए फसल अवशेषों के पुनर्चक्रीकरण का महत्व सर्वोपरि है। इसे किसी भी तरह नकारा नहीं जा सकता। इससे माटी की सेहत में सुधार के साथ ही पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

मृदा उर्वरता में वृद्धि :- फसल अवशेषों का सीधा प्रभाव तो मृदा उर्वरता वृद्धि पर पड़ता ही है साथ ही इसके अवशिष्ट प्रभाव से भी मृदा-उर्वरता वृद्धि में मदद मिलती है। नाईट्रोजन (यूरिया), फास्फोरस धारी उर्वरकों (राकफास्फेट), जिप्सम और सेलुलोज विघटकारी कल्चर का इस्तेमाल करने से फसल-अवशेष का खनिजीकरण शीघ्र होता है और साथ ही इन आदानों की क्षमता भी बढ़ जाती है चूंकि फसल अवशेषों में पौधों रहते हैं अत: इनके सड़ने से इनमें मौजूद सभी पोषक तत्व पुन: माटी को मिल जाते है अत: भूमि को उर्वराशक्ति में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

भौतिक गुणों में सुधार :- फसल अवशेषों के जैविक विघटन के फलस्वरूप पाली सैकराईजों का निर्माण होता है, जिससे मृदा-संरचना (मृदा-समुच्चय) में सुधार होता है। फसल अवशेषों का प्रभाव कम्पोस्ट आदि की तुलना में अधिक होता है। फसल अवशेष रन्ध्र छिद्रों में वृद्धि, मृदा में जल के प्रवाह तथा मृदा की जल धारण क्षमता में अभिवृद्धि करते है। मृदा ढीली हो जाती है, आभासी घनत्व में वृद्धि हो जातीर है, जिससे पौधों की वृद्धि एवं विकास में मदद मिलती है। मल्च के रूप में फसल अवरोधों का प्रयोग करने पर मृदा की जल-तापीय दशा में सुधार होता है, एवं वर्षा जल के साथ मिट्टी के बह जाने की समस्या की गंभीरता की कम हो जाती है।

मृदा अणुजीवों की क्रियाशीलता में सार्थक वृद्धि :- फसल अवशेषों को मिट्टी में मिला देने पर विभिन्न मृदा अणुजीवों द्वारा कार्बन एवं अन्य तत्वों के खनिजीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है। खनिजीकरण के दौरान अणुजीवों की संख्या कई गुना बढ़ जाती है और कार्बन डाई आक्साईड का निर्माण होता है। अणुजीवों की क्रियाशीलता एक दो सप्ताह तक चरम पर रहती है। फसल अवशेषों को मल्च के रूप में उपयोग करने से अणुजीवों की संख्या में सार्थक वृद्धि होती है। ये अणुजीव असहजीवी नाईट्रोजन यौगिकोकरण करने वाले जीवाणु (एजेटोबैक्टर, एजोस्पेरिलम) होते हैं, जो मृदा में नाईट्रोजन की पूर्ति करने में मददगार साबित होते हैं। मृदा में इन्जाईम की क्रियाशीलता में वृद्धि में नाईट्रोजन के भी प्रमाण मिले हैं।

संभावनाएं :- हम केवल उन्हीं फसल अवशेषों को पुन: माटी को लौटा सकते हैं, जो किसान की जरूरतों को पूरी करते के बाद बच जायें। फसल अवशेष पशु चारा और उनके रातिम के रूप में उपयोग होता है, परन्तु पर्याप्त मात्रा बच जाती है, जिससे पुन: भूमि को लौटाने का कारगर तरीका अपनाना होगा। धान-गेहूं फसल-चक्र में जहां फसलों की कटाई मशीन से हो रही हैं, वहां तो फसल अवशेषों को मिट्टी में मिलकार सड़ाने की पूरी-पूरी गुंजाईश है। फसल अवशेषों की जो मात्रा भूसा या कर्वी के रूप में उपयोग होता है, उससे निकले गोबर से गुणवत्ता युक्त पोषक तत्व संवर्द्धित कम्पोस्ट तैयार की जा सकती है। गोबर गैस प्लांट में प्रयोग किये गये फसल अवशेषों से प्राप्त गोबर गैस स्लरी का कारगर उपयोग खाद के रूप में फसल पोषाहार के लिए किया जाना चाहिए।

आज की परिस्थितिकी में असंतुलित उर्वरक प्रयोग के कारण जब माटी के पोषक तत्वों के अनवरत दोहन के कारण माटी की सेहत दिनों दिन खराब होती जा रही है। ऐसी दशा में हमारा हर संभव प्रयास यही होना चाहिए कि फसल अवशेषों को भूमि को लौटाया जाय ताकि भूमि की सेहत मे सुधार हो, कृषि उत्पादन बढ़े और हमारे और पशुओं के सही पोषण के लिए दमदार माटी से ताकतवर खाद्यान्न, चारा, सब्जी और फसल प्राप्त हो, पर्यावरण सुधार हो, और मानव, पशु और सभी जीव-जन्तु स्वस्थ जीवन यापन कर सके। माटी में अणुजीवों की संख्या बढ़ती रहे, केंचुओं की संख्या बढ़े, भौतिक गुण सुधरें, मिट्टील में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़े और हमारा स्वस्थ धरा-संपन्न किसान का सपना साकार हो। हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यदि सभी राज्य इस प्रकार से पृथ्वी और उसके पर्यावरण संरक्षण के लिए ऐसे प्रणा लेकर फसल अवशेषों के सही प्रबंधन का कार्य करें तो रासायनिक उर्वरकों की मात्रा में सार्थक कटौती करके, हम अपनी अमूल्य धरोहर को बचा पाएगें अन्यथा बाद में पछताने से कुछ नहीं होगा। जब धरा ही सही सलामत नहीं रहेगी, तो सब का सब धरा रह जायेगा। इसमें दो राय नहीं।

नागौर का आंवला बना किसानों की लखपति फसल

बढ़ी मांग ने बदली ग्रामीण अर्थव्यवस्था

राजस्थान के नागौर जिले में आंवले की खेती धीरे-धीरे किसानों की सबसे कमाऊ और भरोसेमंद फसल बनकर उभर रही है। पहले जहां किसान बाजरा, गेहूं और चने जैसी परंपरागत फसलों पर निर्भर थे, वहीं अब आंवला उत्पादन ने उनकी आय के नए रास्ते खोल दिए हैं। कम लागत और लगातार होने वाली कमाई ने किसानों को इस फसल की ओर तेजी से आकर्षित किया है।

आंवला खेती से किसानों को स्थायी आमदनी, सूखे क्षेत्रों में बना वरदान

आंवला कम पानी में भी अच्छी पैदावार देने वाली फसल है, इसलिए सूखे और कम वर्षा वाले इलाकों में यह बेहद सुरक्षित विकल्प बन गया है। किसान आंवले के साथ-साथ अपनी पारंपरिक फसलें भी उगाते हैं जिससे अनाज और पशुओं के चारे की जरूरत आसानी से पूरी होती है। इस मिश्रित खेती मॉडल ने किसानों के जोखिम को कम किया और आय बढ़ाने में मदद की।

महिलाओं को मिला रोजगार, घर बैठे तैयार हो रहे आंवला उत्पाद

नागौर में आंवला खेती से ग्रामीण महिलाओं को भी मजबूत रोजगार मिला है। महिलाएं आंवला उबालने, सुखाने, चूर्ण बनाने, अचार, कैंडी और मुरब्बा बनाने के काम में जुटी हैं। इन तैयार उत्पादों से उन्हें नियमित आय मिल रही है, जिससे घर की आर्थिक स्थिति में बड़ा सुधार आया है। महिलाओं की बढ़ती भागीदारी से गांवों में आत्मनिर्भरता का माहौल बन रहा है।

जैविक नागौरी आंवला देशभर में लोकप्रिय, कंपनियों से बढ़ी मांग

नागौर में तैयार जैविक आंवला और उसका पाउडर देशभर की कई कंपनियों और आयुर्वेदिक संस्थानों को भेजा जाता है। गुणवत्ता के कारण इसकी मांग लगातार बढ़ रही है। व्यापारी और किसान दोनों बढ़ती मांग से लाभान्वित हो रहे हैं। विटामिन-ब से भरपूर आंवला बीमारियों से लड़ने की क्षमता बढ़ाता है और यही वजह है कि यह देशव्यापी लोकप्रियता हासिल कर रहा है।

च्यवनप्राश से लेकर कॉस्मेटिक तक, आंवले के व्यापक उपयोग से तेजी पर व्यापार

आंवला च्यवनप्राश, औषधियों, सौंदर्य प्रसाधनों, पाउडर, अचार और मुरब्बा सहित कई उत्पादों में प्रयोग होता है। नागौर के आंवला उत्पाद बड़े शहरों और औषधालयों में लगातार मांग में रहते है। विशेषज्ञों के अनुसार, सर्दियों में पौधों को पाले से बचाने के लिए सूखी पत्तियां रखकर हल्का धुआं करना, छंटाई और जैविक खाद का उपयोग बेहद लाभकारी है।

आंवला खेती ने बदली ग्रामीण तस्वीर, युवाओं और किसानों को मिला नया सहारा

नागौर जिले में आंवला उत्पादन ने ेंषि अर्थव्यवस्था को नई दिशा दी है। किसानों की कमाई बढ़ी है, महिलाएं रोजगार से जुड़ी हैं और युवाओं को भी गांव में बेहतर अवसर मिल रहे हैं। विशेषज्ञों का मानना है कि आने वाले समय में नागौर आंवला उत्पादन का प्रमुख केंद्र बन सकता है और यहां की ग्रामीण अर्थव्यवस्था और अधिक मजबूत होगी।

सादगीपूर्ण जीवनशैली से प्रदूषण मुक्ति की राह

दिल्ली में वायु प्रदूषण का गंभीर संकट नागरिकों के स्वास्थ्य व पारिस्थितिकी के लिए घातक बन चुका है। इसके लिए सुझाए जा रहे तकनीकी कृत्रिम समाधान पर्याप्त नहीं, ठोस उपाय कारगर होंगे। सबक यह है कि आधुनिकता की अंधी दौड़ और अति उपभोक्तावाद को छोड़ कर हमें संयमपूर्ण जीवनशैली और जिम्मेदारी की सोच अपनानी होगी।

राष्ट्रीय राजधानी में वायु प्रदूषण की तीव्रता के बारे में पहले ही काफी कुछ कहा और लिखा जा चुका है। बारम्बार, हमें उस जहरीली हवा के हानिकारक परिणामों की याद दिलाई जाती रही है जिसमें हम सांस लेते हैं। जैसा कि एम्स के पूर्व निदेशक डॉ. रणदीप गुलेरिया कहते है, वायु प्रदूषण कोविड-19 से ज्यादा लोगों की जान ले रहा है। दरअसल, उनके शब्दों में, वायु प्रदूषण के दीर्घकालिक प्रभाव खांसी और सांस फूलने से कहीं आगे तक जाते हैय यह दिल के दौरे, ब्रेन स्ट्रोक और यहां तक कि कैंसर जोखिम का एक बड़ा कारक है। फिर भी, ऐसा लगता है कि हम बुनियादी सवाल उठाने और इस संकट की जड़ तक पहुंचने के लिए तैयार नहीं। इसके बजाय, हम सरकार द्वारा सुझाए गए अस्थायी समाधानों से ही संतुष्ट रहना पसंद कर रहे हैं। एयर प्यूरीफायर खरीदें, बाहर जाते समय एन95 मास्क का इस्तेमाल करें और तकनीकी चमत्कार- क्लाउड सीडिंग एवं कृत्रिम वर्षा - का इंतजार करें! दरअसल, किसी सार्वजनिक समस्या के ऐसे निजीकृत समाधानों से परे देखने, खुद से सवाल करने और उस वैश्विक नजरिये अथवा जीवन शैली के तरीकों पर सवाल उठाने के लिए साहस और राजनीतिक / नैतिक दृढ़ विश्वास की आवश्यकता होती है, जिसे हमने सामान्य बना लिया है।

आइए, हम ईमानदारी से स्वीकार करें कि दिल्ली का वायु प्रदूषण, व्यापक जलवायु संकट और पारिस्थितिकी तंत्र पर बढ़ते हमलों से जुदा नहीं है। आधुनिकता के मूल मिजाज और प्रकृति पर मशीनी प्रभुत्व स्थापित करने की तर्कसंगतता मनाने पर विचार करें। 16वीं शताब्दी के दार्शनिक फ्रांसिस बेकन को याद करें, जिस तरह उन्होंने प्रकृति को मात्र संसाधन के रूप में देखा, और उस पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए प्रकृति पर जीत प्राप्त करने, उसे काबू करने और अपने हिसाब से घुमाने के लिए नव विज्ञान की वकालत की है। यह कह कर कि 'ज्ञान ही शक्ति है' - बेकन का यह सिद्धांत उस सोच को नई गति देता है जिसको लेकर आधुनिकता बहुत उत्साहित रहती है - अंतहीन तकनीकी-भौतिक प्रगति हेतु प्रकृति पर विजय पाने का कार्य। और फिर, आधुनिकता की सबसे प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के रूप में तकनीकी-पूंजीवाद के निरंतर विकास के साथ, हम आर्थिक विकास और उपभोक्तावाद के सिद्धांत के प्रति तेजी से आदी होने लगे। कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे आस-पास की हर चीज, चाहे वह पेड़ हो, नदी हो, जंगल हो या पहाड़, अपना रहस्य और अर्थ खो बैठी है। इस मोहभंग भरी दुनिया में, प्रकृति हमारी बढ़ती जरूरतों और लालच को पूरा करने के लिए अपने 'उपयोग मूल्य' के साथ एक संसाधन मात्र बन गई है - ज्यादा बिजली, ज्यादा कारें, ज्यादा फर्नीचर, ज्यादा यात्राएं, ज्यादा कपड़े, ज्यादा उपभोग... हम सड़कें बनाने के लिए हजारों पेड़ों को नष्ट करने से नहीं हिचकिचातेय बांध बनाने और बिजली पैदा करने के लिए नदी के प्राकृतिक प्रवाह और लय को नष्ट कर रहे है - हम उपभोक्तावादी पर्यटकों की जरूरतों की पूर्ति हेतु होटल और रिसॉर्ट बनाने के लिए नाजुक पहाड़ों को नष्ट करते है। इसके अलावा, चूंकि आधुनिकता के विमर्श में गति और गतिशीलता का पंथ अंतर्निहित है, इसलिए हमें ज्यादा कारों, ज्यादा ट्रेनों, ज्यादा हवाई जहाजों की जरूरत हैय और इसके वास्ते उपयोग होने वाले जीवाश्म ईंधन का निरंतर दोहन ज्यादा से ज्यादा कार्बन उत्सर्जन को बढ़ावा देता है। हम आधुनिकता व तकनीकी-पूंजीवाद के दुष्चक्र में फंसे हैं। जैसा कि समाजशास्त्री उलरिच बेक ने कहा है, 'अब हम एक 'जोखिम युक्त समाज' में जी रहे है।'

दिल्ली का वायु प्रदूषण आधुनिकता की त्रासदी का एक उदाहरण है। शहर में घूमते वक्त वाहनों की भरमार देखिए। जैसा कि दिल्ली के 2023 के आंकड़े बताते है, राजधानी में पंजीकृत वाहनों की कुल संख्या 1.2 करोड़ थी, जिनमें से 33.8 लाख निजी कारें थीं। शहर में जारी अंतहीन निर्माण कार्य को देखिए - कहीं कोई नया राजमार्ग, कोई नया फ्लाईओवर, कोई नया मेट्रो स्टेशन, या गगनचुंबी मंजिलों वाली कोई नई विशाल हाउसिंग सोसायटी बनती नजर आती है। इसे स्वीकार करें, दिल्ली का वायु प्रदूषण मुख्य रूप से पड़ोसी राज्यों में पराली जलाने के कारण नहीं है। इसकी बजाय, यह बड़े पैमाने के विकास, गति और उपभोग में अंतर्निहित जन्मजात अवगुण के कारण है। हम यह कैसे भूल सकते है कि वाहनों से निकलने वाला उत्सर्जन दिल्ली के वायु प्रदूषण में एक बड़ा योगदानकर्ता है, अध्ययनों से पता चलता है कि वार्षिक पीएम-2.5 प्रदूषण मानक के घनत्व में यह 10-30 प्रतिशत तक जिम्मेदार है, जो इसे खराब वायु गुणवत्ता में एक प्रमुख वजह बनाता है। इसी तरह, औद्योगिक गतिविधियों और बिजली संयंत्रों से उत्सर्जन, अपशिष्ट जलाने, भवन निर्माण कार्य और सड़क से उठती धूल शहर में गंभीर वायु प्रदूषण पैदा करने में प्रमुख भूमिका निभाते है। इतना ही नहीं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि दिल्ली-एनसीआर में ऑफिस जाने वालों के लिए, जैसा कि एक अध्ययन बताता है, औसत एकतरफा यात्रा दूरी 22 किलोमीटर है। वास्तव में, ये लंबी औसत यात्रा दूरी और अधिक यात्रा समय पीएम 2.5 और नाइट्रोजन ऑक्साइड जैसे प्रदूषकों के प्रमुख स्रोत हैं।

लेकिन, ये सवाल उठाना मुश्किल है। क्योंकि इसके लिए हमें खुद के अंदर झांकना होगा और अपनी अतिशयी-आधुनिकता भरी जीवन शैली पर सवाल उठाने पड़ेंगे। लेकिन यह करने की बजाय, हमारे लिए यह मानना आसान है कि अगर हम अपने बेडरूम में एयर प्यूरीफायर इस्तेमाल करेंगे, तो हम सुरक्षित हो जाएंगे, यह मानना आसान है कि अगर टेक्नो-साइंस नकली बारिश कर सकती है, तो चिंता करने की ज्यादा जरूरत नहीं। यह मानना आसान है कि अगर हम पेट्रोल-डीजल की बजाय इलेक्ट्रिक कारें अपना लें, तो समस्या हल हो जाएगी। गरीबों के मत्थे उनकी 'गैर-साफ सफाई' जीवन शैली का दोष मढ़ना आसान है। हालांकि, यह मानना मुश्किल है कि अमीर और पैसे वाले लोग, अपनी लग्जरी एसयूवी और स्पीड कारों, बार-बार हवाई यात्राओं और अति उपभोक्तावाद की वजह से कार्बन एमिशन में बहुत ज्यादा योगदान देते हैं। और यह भूलना आसान है कि इस प्रदूषण के बुरे स्वास्थ्य प्रभाव अक्सर उन गरीबों पर ज्यादा पड़ते हैं जो प्रदूषित इलाकों में रहते हैं।

सच तो यह है कि जब तक हम टेक्नो-कैपिटलिज्म के दायरे से आगे देखने की हिम्मत नहीं करेंगे, इस 'जोखिम कारक समाज' से कोई छुटकारा या आजादी नहीं है और वह नहीं अपनाते जिसे 'अव्यावहारिक' और 'यूटोपियन' (सब चलता है वाली प्रवृत्ति) माना जाता है। इसके लिए जीवन शैली और शहरी प्लानिंग के एक नए तरीके की जरूरत है। इसके लिए एक बदलाव की जरूरत है - तेज रफ्तार से धीमी गति की ओर, बड़े-बड़े एक्सप्रेस-वे से ऐसी सड़कों की तरफ जो पैदल चलने और साइकिल चलाने को प्रोत्साहन दें, प्राइवेट गाड़ियों से सार्वजनिक परिवहन की ओर, और दिखावटी उपभोक्तावाद से सादे-टिकाऊ जीवन की ओरय और झूठी जरूरतों की चाहत से उन चीजों की मांग की तरफ जो हमें और हमारे बच्चों को स्वस्थ रखे - बिना प्रदूषण वाला पीने का पानी, साफ हवा, पेड़, पानी के स्रोत, नीला आसमान और भरपूर हरी-भरी जगह।

अपनी प्राथमिकताएं चुनना हम पर निर्भर है, सरकार पर दबाव डालें, और तय करना कि हम किस तरह का 'विकास' चाहते हैं।

- अवीजीत पाठक

ठुल्लेवाल गांव के युवा किसान सतनाम सिंह करते हैं वैकल्पिक खेती

ड्रैगन फ्रूट की खेती से लाखों की कमाई, 200 किसानों को साथ जोड़ा

ज़िला बरनाला के गांव ठुल्लेवाल के युवा किसान सतनाम सिंह ने 10 साल पहले खेती में नहीं राह चुनी। उन्होंने गुजरात से ड्रैगन फ्रूट की पौध लाकर आधा एकड़ से कम ज़मीन में लगाई। उस समय बरनाला ज़िले में किसी ने भी इस विदेशी फल की खेती के बारे में सोचा तक नहीं था। लगातार मेहनत और लगन से उन्होंने इस खेती का विस्तार चार एकड़ कर लिया। इसके जरिये वह लाखों रुपए कमाते हैं और 5-6 लोगों को रोज़गार दे रखा है। उनकी प्रेरणा से करीब 200 किसान ड्रैगन फ्रूट की खेती से जुड़ गए हैं।

39 वर्षीय कम्प्यूटर इंजीनियर सतनाम के मुताबिक, यह वैकल्पिक खेती है, जो साधारण फसलों से अलग है। इसमें पौधों को सहारा देने के लिए खेत में सीमेंट या कंक्रीट के खंभे गाड़ने पड़ते हैं। खंभों पर गार्ड (लोहे/सीमेंट की रिंग) लगाई जाती है, ताकि पौधा ऊपर चढ़ सके और बेल की तरह चारों ओर फैल सके। यह पौधा दिन में धूप और रात में नमी पसंद करता है। गर्मी-सर्दी दोनों मौसम सह लेता है, लेकिन ठंडी हवाओं से बचाना जरूरी है। करीब 12-18 माह बाद पौधा फल देना शुरू करता है। एक बार लगाया पौधा 20 साल तक फल देता रहता है। उनके मुताबिक ड्रैगन फ्रूट सीज़न 5-6 महीने का होता है। जुलाई से लेकर नवम्बर तक यह फल देता है। इस वक्त इसका पीक सीज़न चल रहा है। वह खुद ही फल की तुड़ाई करवाकर पैकिंग कराते हैं और मंडियों में बेचते हैं। बरनाला, संगरूर, बठिंडा, लुधियाना जैसी मंडियों में यह हाथों-हाथ बिक जाता है। पेमेंट नगद और मुनाफा भी अच्छा। एक एकड़ में एक साल में 30 से 35 क्विंटल की पैदावार होती है। एक किलो फल की कीमत लगभग 150 रुपए होती है।

उनके अनुसार, यह फल न केवल पारम्परिक फसल-चक्र (गेहूं-धान) से निकलने का न सिर्फ बेहतर रास्ता है, बल्कि यह उस सीमावर्ती सूबे के किसानों को बेहतर मुनाफे और नए बाज़ारों से जोड़ता है, जहां भूजल संरक्षण के लिए मारामारी मची है। लिहाजा, ड्रैगन फ्रूट की खेती में पानी की खपत कम होती है और बाज़ार में कीमत भी अच्छी मिलती है। यही कारण है कि अब किसान धीरे-धीरे इस कृषि का रुख कर रहे हैं।

किसानों के हित में जारी

बीजोपचार

अच्छी फसलों का मूल आधार

बीजोपचार के लाभ

★ अधिक अंकुरण

★ अधिक प्रबल पौधे

★ आरंभिक बिमारियों का प्रभावी नियंत्रण

★ स्वस्थ पौधों की संख्या ज्यादा

देश के सभी किसान, पढ़ें होकर होशियार

अच्छी पैदावार तभी होगी, जब बीजों का हो सही उपचार

नागपुर में 70 करोड़ रुपये का 'क्लीन प्लांट हब' स्थापित

संतरा उत्पादन को मिलेगा नया जीवन

नागपुर, महाराष्ट्र में विदर्भ के संतरा उत्पादकों के लिए आज का दिन बेहद महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि नागपुर में 70 करोड़ रुपये की लागत से एक अत्याधुनिक 'क्लीन प्लांट हब' स्थापित किए जाने की घोषणा की गई है। यह केंद्र संतरा उत्पादन के लिए डिजीज-फ्री (रोग-मुक्त) रूटस्टॉक उपलब्ध कराएगा, जिससे किसानों को स्वस्थ पौधे, बेहतर बगीचे और अधिक उपज प्राप्त होगी। यह पहल लंबे समय से संतरा किसानों को प्रभावित कर रही बीमारियों और उत्पादन में लगातार हो रही गिरावट को रोकने की दिशा में बड़ा कदम मानी जा रही है।

यह हब ऐसे उच्च गुणवत्ता वाले पौधों का उत्पादन करेगा जो वायरस, बैक्टीरिया और फंगस जनित रोगों से मुक्त होंगे। कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि महाराष्ट्र का संतरा उद्योग पिछले कुछ वर्षों से सिट्रस डिक्लाइन और अन्य रोगों की वजह से संघर्ष कर रहा था। रोग-मुक्त रोपण सामग्री उपलब्ध होने से किसानों की लागत कम होगी, बगीचों की आयु बढ़ेगी और निर्यात की संभावनाएँ भी मजबूत होंगी।

इसके साथ ही, केंद्र और राज्य स्तर पर कृषि से जुड़े दो प्रमुख कानूनेंबीज अधिनियम और कीटनाशक अधिनियम, जो 1968 से लागू हैं, में सुधार की दिशा में भी गंभीर चर्चा हुई। सरकार ने संकेत दिए हैं कि इन कानूनों के नए ड्राफ्ट तैयार कर लिए गए हैं और अब इन्हें स्टेकहोल्डर्स के फीडबैक के लिए सार्वजनिक रूप से खोला जाएगा। इससे गुणवत्तापूर्ण बीज, सुरक्षित कीटनाशक और कृषि-इनपुट बाजार में पारदर्शिता बढ़ने की उम्मीद है।

बैठक में कपास खरीद, बदलते जलवायु में जल-संसाधन प्रबंधन, तथा फसलों की क्षमता बढ़ाने के लिए जीनोम एडिटिंग जैसी उन्नत तकनीकों पर भी चर्चा हुई। विशेषज्ञों ने बताया कि जल की कमी वाले क्षेत्रों में जीनोम-संपादित फसलें भविष्य में बेहतर उत्पादन दे सकती हैं और किसानों को जलवायु जोखिमों से बचा सकती हैं।

किसानों के लिए इसका सीधा अर्थ यह है कि आने वाले समय में उन्हें बेहतर रोपण सामग्री, सख्त गुणवत्ता नियंत्रण और अधिक वैज्ञानिक सहायता मिलेगी। विशेष रूप से विदर्भ और आसपास के संतरा उत्पादक जिलों में यह 'क्लीन प्लांट हब' कृषि अर्थव्यवस्था में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है और किसानों की आमदनी बढ़ाने में अहम भूमिका निभा सकता है।